विप्लव—१६

बात-बात में बात

कथात्मक विवादों में महत्वपूर्ण
समस्याओं का विवेचन
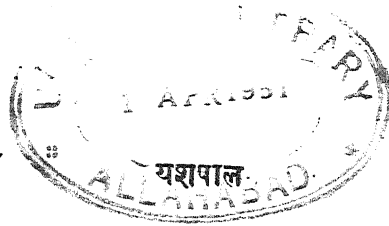
यशपाल

प्रकाशक
विप्लव कार्यालय
हीवेट रोड
लखनऊ

अगस्त १६५०

मूल्य २॥)

समर्पण—

ज्यों केले के पात-पात में पात,
त्यों सज्जनन की बात-बात में बात।

यशपाल

विषय-सूची

परिचयः—

बात-बात में जब बात पक्की हो जाती है तो वह 'वाद' का रूप ले लेती है। पण्डितों की भाषा में उसे 'वाद' कहते हैं। बात के दो छोर होते हैं, एक आरम्भ का दूसरा अंत का। जब बात फैल जाती है तो उसके आदि अंत में द्वन्द्व होने लगता है, इससे नयी बात या नया ज्ञान पैदा होता है। ज्ञानी लोग बात से घबराते नहीं, उससे ज्ञान प्राप्त करते हैं।

बात का मूल्य और अर्थ कहने वाले पर भी निर्भर करता है इसलिये चक्कर क्लब में बात करने वालों का संक्षिप्त परिचय श्रोताओं या पाठकों के संतोष के लिये दे देना उपयोगी है :—

जिज्ञासु—पढ़े लिखे बहुत काफ़ी हैं। तरह-तरह की परस्पर मत-विरोधी पुस्तकें और विचार पढ़ते रहने के कारण अपना स्थिर कोई मत नहीं। जानने की इच्छा आप का स्वभाव या चस्का बन गया है।

राष्ट्रीय—भारत को संसार का गुरु विश्वास करते हैं। प्राचीन भारतीय संस्कृति के अनन्य समर्थक हैं और उसी के पुनरुत्थान में देश का कल्याण समझते हैं। समाजवाद और कम्युनिज्म को भारतीय भावना और संस्कृति का शत्रु और नाशक समझते हैं। हिन्दू-राष्ट्र के समर्थक हैं।

वैज्ञानिक—परम्परागत नैतिक सिद्धान्तों अथवा विश्वास को सत्य की कसौटी नहीं मानते। भौतिक-विज्ञान और समाज के अनुभवों के अनुसार ही नैतिकता का भी विश्लेषण और निश्चय करने के समर्थक हैं।

शुद्ध साहित्यिक—जीवन में साहित्यिक आनन्द से ऊंची कोई वस्तु स्वीकार नहीं करते। साहित्य का उद्देश्य स्वतः साहित्य को और उससे चरम मानसिक आनन्द की प्राप्ति ही मानते हैं।

प्रगतिशील— साहित्य को जीवन की भौतिक तथा मानसिक पूर्णता का और सामाजिक, राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन मानते हैं।

सर्वोदयी—भारतीत और आध्यात्मिक संस्कृति की गांधीवादी व्याख्या के समर्थक हैं। देश और संसार का कल्याण गांधीवादी सत्य-अहिंसा के द्वारा ही सम्भव समझते हैं।

इतिहासज्ञ–प्रत्येक प्रसंग में इतिहास की विवेचना करते हैं।

मार्क्सवादी— तर्क में द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी मार्ग को मानते हैं। सामाजिक, साहित्यिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं को आर्थिक आधार और श्रेणी संघर्ष की कसौटी पर जांचते हैं।

कामरेड— विचारधारा मार्क्सवादी है परन्तु बातचीत में दांव पेच से नहीं, कठोर सत्य के रूप में निर्णयात्मक बात कहना चाहते हैं।

श्रीमती जी—एम. ए. तक पढ़-लिख कर गृहस्थी चलाती हैं। कलात्मक रुचि है, पढ़ने लिखने से शौक है, तर्क का चस्का है। विश्वास और तर्क के मिले-जुले मार्ग पर चलती हैं।

महिला —प्राचीन भारतीय नारी के आदर्श की समर्थक हैं परन्तु स्त्रियों के लिये पुरुषों के समान अधिकार की पक्षपाती भी हैं।

भद्रपुरुष—बहस में झगड़े से बहुत घबराते हैं परन्तु बहस के बिना रह भी नहीं सकते। नित्य दो समाचार पत्रों को आद्योपांत पढ़ते हैं।

कांग्रेसी—कांग्रेसी-सरकार के समर्थक, धनी और कारोबारी सज्जन हैं। समाजवाद और क्रान्ति से घबराते हैं।

मौजी — नौकरी पेशा आदमी हैं, दुतरफा बात करते हैं। गाने का शौक है। तर्जों की नकल हू-ब-हू कर लेते हैं। मज़ाक गहरा और अर्थ पूर्ण करते हैं!

साहित्य का प्रयोजन और रूप

समाजवादी, राष्ट्रीय, प्रगतिवादी, शुद्ध साहित्यिक, सर्वोदयी और कामरेड तथा जिज्ञासु जैसे भिन्न मत और विश्वास के लोग जहाँ जुट जायें, वहां बहस और विवाद के सिवा और क्या होगा ? अनेक बातों में घोर मतभेद होने पर भी 'चक्कर क्लब' में इस बात पर मतैक्य या सर्व-सम्मति है कि "वादे वादे जायतेतत्व-बोधः" अर्थात् बात-बात में 'बात' निकल आती है। इसलिये अनेक अवसरों पर तुमुल संघर्ष हो जाने पर भी 'चक्कर क्लब' में वाद-विवाद का क्रम बना ही रहता है।

जब कभी कोई गम्भीर विषय विवाद के लिये चालू नहीं रहता तो चलती फिल्मों को ही चर्चा होने लगती है। आजकल के नागरिक जीवन में बात-चीत का इस से सुलभ विषय और क्या है ? किसी फिल्म की चर्चा करने के बाद मौजी गुनगुना रहे थे—

"मैं भौंरा तू फूल, यह मत भूल
जवानी लौट के आये ना।"
'यह जीवन मुझको प्यारा...'

जिज्ञासू चुटकी बजाते हुये ताल पर झूमने लगे और सहसा बोल उठे—"भई खूब, कितनी सच्ची, कितनी सीधी, और जोरदार बात कहदी है ?"

प्रगतिवादी ने समर्थन किया—"इसका पूरा असर इसके सीधे-पन में है। यही बात क्लिष्ट शब्दों में कहिये, वह बात नहीं आयेगी।"

अपने गाये गीत की प्रशंसा से मौजी उत्साहित हुये और जरा ऊंचे स्वर में दूसरी गज़ल गाने लगे:—

"तकदीर बनी बन कर बिगड़ी
दुनिया ने हमें बरबाद किया...."

"गौरव तो हमें अपने प्राचीन साहित्य का बहुत है'—वैज्ञानिक बोले—"परन्तु रस सभी को आता है आजकल की चीजों में? जादू वह जो सिर पर चढ़ कर बोले! आपके कालिदास, सूर, तुलसी, गालिब इकबाल, पंत, बच्चन, निराला, की चीजें तो कोई सड़कों पर गाता नहीं फिरता। सिनेमा की इन चीजों में कुछ तो है जो लोग-बाग का दिल पकड़ लेती हैं। हमारा साहित्यिक उस बात को क्यों नहीं पकड़ता?'

वैज्ञानिक को बात के उत्तर में शुद्ध साहित्यिक मुस्करा दिये। उन्हें सम्बोधन कर जिज्ञासू बोले—"कहिये, कहिये, आप कहिये?"

शुद्ध साहित्यिक मुस्कराते हुये होठों से बोले—"मेघ से जल बरसता है। वह जल हिमाच्छादित पर्वत शृंगों पर सूर्य की रश्मियों में हीरे के समान ज्योतिर्मय होता है। उसी मेघ से जल बरसता है साधारण ग्राम की भूमि पर और गदला होकर नालियों में बह जाता है। इसी प्रकार साहित्य और कविता के दो रूप हैं।"

उपमा, कविता और साहित्य के विश्लेषण से श्रीमती जी का चेहरा प्रशंसा से खिल उठा परन्तु उसी बात से कामरेड उत्तेजित हो कर बोले—"यानि आप जनता द्वारा समझे जा सकने वाले साहित्य को गदला जल कहते हैं?'

बीच में बोल उठे वैज्ञानिक। शुद्ध साहित्यिक को उन्होंने सम्बोधन किया—"आपकी उपमा बहुत ऊंची है परन्तु श्रीमान्, गांव की भूमि पर बरसने वाले मेघ का जल गदला होकर खेतों में समा जाता है और अन्न पैदा करता है। हिमाच्छादित पर्वत शृंग पर बरस कर जल जाने वाला जल केवल चमका ही करता है और जब पर्वत शृंग उसका बोझ सम्भाल नहीं पाता तो वह ग्लेशियर (हिमशिल) के रूप में गिर पड़ता है और नदियों में संहारकारी बाढ़ आ जाती है। हमें गांव की भूमि पर बरसने वाले जलसे ही अधिक प्रयोजन है?"

धूप में चमकते हिम शृंगों पर गदला जल छींट दिया जाने से श्रीमती जी के चेहरे पर आ गई प्रसन्नता की चमक की जगह गम्भीरता का बादल छा गया। कामरेड ने गर्दन ऊंची कर समर्थन किया—"ठीक तो है, हमें जनता के लिये साहित्य चाहिये; साहित्य केवल महलों की ही चीज नहीं है ?'

"नहीं केवल इतना ही नहीं:"—प्रगतिवादी ने संशोधन किया—"गांवों की भूमि पर बरसने वाला जल बेढंगे तौर पर बह कर गांव के मकानों की नींवों में मार कर सकता है, बहुत से खेतों की फसल बहा ले जा सकता है और बेमौका ठहरा रह कर बाद में मलेरिया पैदा कर सकता है। वर्षा के जल को हानिकारक न होने देकर लाभदायक बनाने के लिये सचेत रहना पड़ता है, बन्द भी लगाने पड़ते हैं और नालियां भी खोदनी पड़ती हैं। वर्षा तो प्रकृति की देन है, साहित्य मनुष्य की अपनी रचना। साहित्य के लिये तो और भी सचेत व्यवस्था की आवश्यकता है।'

'यानी, उसे प्रचार और प्रोपेगैण्डा बना देने की'—शुद्ध साहित्यिक दोनों हाथ फैलाकर बोले और जोर से विद्रोप का कहकहा लगा दिया।

उनके अट्टाहास से प्रगतिवादी को झेंपते देख मार्क्सवादी ने अपने नये जले सिगरेट से एक कश खींच कर पूछा—"अच्छा आप ही बताइये साहित्य प्रचार नहीं तो क्या है ?"

"साहित्य है सौन्दर्य की अनुभूति"—अपनी रीढ़ पर तन कर शुद्ध साहित्यिक ने अपने उत्तर की व्यपाकता प्रकट करने के लिये दोनों हाथ दूर तक फैला दिये !

मर्म की इस बात को सभी लोग गम्भीरता से सुन रहे थे। उस गम्भीरता की उपेक्षा कर मार्क्सवादी ने मुस्कराते हुये पूछा—"सौन्दय की अनुभूति या सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ?"

"एक ही बात है ;अनुभूति या अभिव्यक्ति, अभिव्यक्ति या अनुभूति" सिर हिला शुद्ध साहित्यिक ने अपने फैले हुये हाथ ऊपर उठा दिये।

सर्वोदयी ने भी सिर हिलाकर उनका समर्थन किया—'हां, एक ही बात है, मर्म की बात है न। हां एक ही तो बात है।'

वैज्ञानिक ने ऊंचे स्वर में विरोध किया—"एक बात आप कैसे कह सकते हैं ? एक समय आप कुछ अनुभव करते है और उसे अभिव्यक्त या जाहिर नही करते। दूसरे समय दूसरे की अभिव्यक्ति सुनकर अनुभव करने लगते हैं। अनुभूति आपके मन की वस्तु है परन्तु अभिव्यक्ति एक सामाजिक वस्तु है। साहित्य को अभिव्यक्ति कहेंगे जिसका प्रयोजन है अपनी अनुभूति प्रकट करना, अपनी अनुभूति का भाग दूसरों को देना; अनुभूति को सामाजिक रूप देना ?"

"हां हां, हां, हां ठीक है"—शुद्ध साहित्यिक ने उदारता से स्वीकार किया—"पर दो बात नहीं, बात एक ही है। वही बात न; सौन्दर्य और आनन्द की सृष्टि करना और उसका विस्तार करना।"

"परमात्मा के सत्य सौन्दर्य का और अहिंसा तथा प्रेम का विस्तार...." सर्वोदयी ने अपनी बात जोड़ दी।

"किसी भी विचार का विस्तार प्रचार है।"—वैज्ञानिक ने तक किया। इन दोनों की उपेक्षा कर मार्क्सवादी बोल उठे—"परन्तु उस सौन्दर्य और आनन्द का एक दृष्टिकोण या प्रयोजन तो होना चाहिये।"

"वाह," सर्वोदयी जी ने उत्तर दिया—"सौन्दर्य और आनन्द का, प्रेम और अहिंसा का क्या प्रयोजन और क्या दृष्टिकोण ? वह तो स्वतः चरम लक्ष है। वह कोई सांसारिक संघर्ष की वस्तु तो है नहीं।"

"ठीक, ठीक शुद्ध साहित्यिक ने जोर से हामी भर स्वीकार किया—"सौन्दर्य और आनन्द का क्या लक्ष्य ? वही तो परम लक्ष्य है, परम सुख है। सौन्दर्य के लिये सौन्दर्य की उपासना, निश्काम उपासना; इसी को कला के लिये कला या 'आर्ट फार आर्ट सेक' कहते हैं। यही है साहित्य का लक्ष्य 'सत्यम्, शिवम, सुन्दरम।"—उन्हों ने विजय के संतोष से सब ओर देखा और उन्हें श्रीमती जी और महिला के चेहरे पर अपनी बात का प्रभाव दिखाई दिया परन्तु मार्क्सवादी इस बात से संतुष्ट नहीं हुए और सिर हिलाकर बोले ?—

"सौन्दर्य; सौन्दर्य तो पदार्थों और भावों का गुण है। सौन्दर्य को आप पदार्थ और भाव से अलग नहीं कर सकते। सुन्दर सदा कोई पदार्थ या भाव होता है। जैसे सौन्दर्य बोध बिना पदार्थ के नहीं हो

सकता वैसे ही कला की अनुभूति और अभिव्यक्ति उद्देश्य या भाव को प्रस्तुत किये बिना नहीं हो सकती।"

"कला के लिये कला या आर्ट फार आर्ट सेक, एक निस्सार बात है, जैसे सौन्दर्य केवल पदार्थों का गुण ही है स्वयम् कोई वस्तु नहीं, ऐसे ही साहित्य-कला विचारों की सुगढ़ अभिव्यक्ति ही है, स्वयम् कोई वस्तु नहीं। कलाकार कला के लिये कला की बात उस समय कहता है जब वह अपनी कृति में विफलता अनुभव करता है, उसे निश्प्रयोजन होता देखता है। और अपने निष्फल प्रयत्न को ही लक्ष्य बता कर संतोष पाना चाहता है। स्टैलिन के शब्दों में—"कलाकार मानव आत्मा का इंजीनियर है।" उसकी कला का उद्देश्य 'कला' या मन बहलाव ही नहीं परन्तु समाज का भौतिक और सांस्कृतिक कल्याण होना चाहिये ?"

शान्त स्वर में जिज्ञासू ने प्रश्न किया—"यदि कला का उद्देश्य समाज का निर्माण, रचना, और कल्याण ही हो तो फिर विधि-निषेध की पुस्तकों, नीति ग्रन्थों और साहित्य में क्या अन्तर रह जायगा ?"

"हाँ हाँ," शुद्ध साहित्यिक उनकी बात लेकर बोले—"फिर तो साहित्य 'नुसखा' और 'स्लोगन' ही हो जायेगा। साहित्य का वास्तविक गुण और प्रयोजन तो सौन्दर्य की रचना और अभिव्यक्ति ही है, यह गुण उसमें कहां रहेगा। आप अपना प्रचार करते रहिये, राजनैतिक और सामाजिक संघर्ष भी चलाइये परन्तु साहित्य के सौन्दर्य को प्रचार से कलुषित न कीजिये।"

"कोई साहित्य प्रचार रहित नहीं हो सकता"—मार्क्सवादी गम्भीरता से बोले—'उद्देश्यों, आदर्शों और विचारों की कलापूर्ण अभिव्यक्ति या विचारार्थ समस्याओं की ओर कलापूर्ण ढंग से ध्यान दिलाना ही साहित्य है। विचारों को प्रकट करना यदि प्रचार करना है तो प्रभावशाली सम्पूर्ण साहित्य प्रचारात्मक साहित्य है। केवल विचार शून्य साहित्य ही प्रचार रहित अथवा 'कला मात्र' के लिये हो सकता है। यह बात दूसरी है कि कोई प्रचार आप को सुहाता है, कोई प्रचार आप को चुभता है। हमारा प्राचीन साहित्य उस समय की सामाजिक व्यवस्था

के प्रति श्रद्धा का और उस समय की शासक श्रेणी के अधिकारों का समर्थन और प्रचार ही तो था।'

शुद्ध साहित्यिक, सर्वोदयी और राष्ट्रीय मार्क्सवादी की बात से चुटिया से गये—'यह आप क्या कह रहे हैं ?' शुद्ध साहित्यिक ने आंखें फैलाकर पूछा—'अमूल्य रत्नों के भण्डार भारत के गौरव साहित्य को आप शासक श्रेणी के अधिकारों का प्रचार बता रहे हैं ?'

सर्वोदयी जी ने दुहाई दी—'साहित्य में भी आप श्रेणी संघष का विष भर रहे हैं ?'

जिज्ञासू ने भी प्रश्न किया—"उस साहित्य में आप श्रेणी संघर्ष और श्रेणी पक्षपात कहां पाते हैं ?'

मार्क्सवादी चुनौती स्वीकार कर अपने स्थान से एक बालिस्त आगे खिसक कर बोले—"सुनिए, बाल्मीकी रामायण को तो आप उत्कृष्ट, सुन्दर, आदर्श साहित्य मानते है ?' उन्होंने स्वीकृति के लिए सब की ओर देखा-"बाल्मीकी लिख गये है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने स्वर्ग प्राप्ती की इच्छा से तपस्या करने वाले शूद्र का सिर काटकर पृथ्वी से पाप का बोझ हल्का किया और इस न्याय से देवता भी प्रसन्न हो गये ! क्या इसका स्पष्ट प्रयोजन यह नहीं है कि शूद्र का तपस्या करके ब्राह्मण के समान बनने की इच्छा करना अपराध है, पाप है। शूद्रों की महत्ता द्विजों की सेवा करने में ही है। शूद्र यदि सेवा धर्म छोड़कर तप का धर्म अपनाये तो उसे दण्ड दिया जाना चाहिए। यह ब्राह्मण के तपस्या अथवा आध्यात्मिक चिन्तन के अधिकार की ठेकेदारी और शूद्र के लिए सेवाधर्म का प्रचार नहीं तो क्या है ?'

"और प्रजा ने या शूद्रों ने इस बात पर सभा करके या जुलूस निकाल कर कोई असन्तोष भी प्रकट नहीं किया"—कामरेड बोले—"और रामचन्द्र जी थे मर्यादा या मार्ग दिखाने वाले ! अर्थात् बाल्मीकि ने रामचन्द्र जी के व्यवहार के रूप में यह एक आदर्श उपस्थित किया और इतिहास साक्षी है कि सैकड़ों वर्ष तक इस आदर्श का पालन होता भी रहा। कितना प्रबल और प्रभावशाली प्रचार था यह ? हम

पूछते हैं, 'कांग्रेसी रामराज्य' में आज यदि सरकार ऐसा करे तो आप सह जाइयेगा ?"

"क्या बेतुकी बात करते हो जी ?" राष्ट्रीय ने कुछ बिगड़ कर डांटा—"उस समय के समाज और संस्कृति से आज की परिस्थिति की क्या तुलना ?'

"हम तो यही कहते हैं कि उस समय के समाज और संस्कृति से आज की परिस्थितियों की तुलना नहीं और कोई सम्बन्ध भी नहीं"—इतिहासज्ञ बोले—"परन्तु महाराज आप ही उस संस्कृति की पुनः स्थापना करना चाहते हैं ! और आप के पटेल साहब आज भी उपदेश देते हैं कि राजत्व का सम्मान करना भारतीय संस्कृति की परम्परा है। आज राजत्व का अधिकार उनके हाथ में हैं। वे मर्यादा पुरुषोत्तम की भाँति ही निरंकुश होकर अपने न्याय की स्थापना करना चाहते हैं। इसी लिये वे रामराज्य का आदर्श हमारे सामने पेश करते हैं। परन्तु यह निरंकुश रामराज्य किसके लिये सुविधाजनक होगा ? प्रजा के लिये या शासक के लिये ?'

'साहित्य की बात हो रही है'—भद्र पुरुष ने टोका—"राजनीति को आप बीच में क्यों लाते हैं ?''

"राजनीति न सही"—प्रगतिवादी बोले—'साहित्य की ही बात कीजिये ! बाल्मीकी स्त्री-चरित्र के आदर्शरूप सती सीता को उपस्थित करते है। रामचन्द्र को सीता के सतीत्व पर झूठा सन्देह हो गया और सीता जी आग में जलकर मरने के लिये तैयार हो गई। वे अनुकरणीय इसलिए हैं कि उन्होंने पति से अपने सतीत्व के प्रति सन्देह का कारण पूछने की भी धृष्टता नहीं की, अन्याय के विरुद्ध दुहाई नहीं दी। क्योंकि पति तो परमेश्वर है। उसकी इच्छा की पूर्ति ही स्त्री का धर्म है। वे सती थीं इसलिए अग्नि उन्हें जला नहीं सकी। आप ही बताइये, स्त्री के लिये पति की परम दासता का इससे बड़ा प्रचार और क्या होगा ?"

"इस प्रचार के परिणाम में इस देश में स्त्रियों को सती किया गया या नहीं ? आजकल अग्नि तो क्या, गरम तवा या गरम घी-तेल का

छींटा ही पतिव्रताओं और सतियों के बदन में छाले डाल देता है। परन्तु पतिव्रत धर्म के प्रचार की आवश्यकता अब भी शेष है। कहिए यह प्रचार है या नहीं ?'

"इसे आप प्रचार कहते हैं ? यह प्रचार नहीं, यह जीवन का सत्य और आदर्श है" —सर्वोदयी जी बोले —"प्रचार में स्वार्थ और हिंसा की भावना होती है। यह मनुष्य के अन्तःकरण में भगवान द्वारा शाश्वत धर्म की प्रेरणा है।"

"जी ?"–कामरेड ने सिर हिलाकर पूछा–"तपस्या करने वाले शूद्र का सिर काट लेना भगवान की प्रेरणा है, अछूतों का मन्दिर-प्रवेश कराना भी भगवान की प्रेरणा है ? पति के झूठे सन्देह में स्त्री को आग में जला देना ईश्वरीय प्रेरणा है और स्त्री को माता और देवी कह कर फुसलाना और पति की दासता के गर्व का उपदेश देना भी ईश्वरीय प्रेरणा है ?"

"यह तो आप के मन में हिंसा और द्वेष की प्रवृत्ति बोल रही है"—करुणा का भाव चेहरे पर लाकर सर्वोदयी जी ने समझाया। परन्तु इस से संतुष्ट न होकर राष्ट्रीय ऊँचे स्वर में बोले—"यह तो काल धर्म है। धर्म देश, काल और पात्र के अनुसार होता है।"

"साहित्य भी देश, काल और पात्र के अनुसार होता है ?" कामरेड ने फुलझड़ी छोड़ दी।

"यदि धर्म देश, काल के अनुसार होता है तो वह शाश्वत नहीं हो सकता"—मार्क्सवादी ने अपना 'ट्रुप' का पत्ता फेंका।

उनके तर्क का उत्तर देने के लिए सर्वोदयी फिर बोले—"देश और काल के परिवर्तनों के बावजूद धर्म और सत्य का मूल 'सत्य और अहिंसा' भगवान की प्रेरणा होने के कारण शाश्वत ही है।"

"अच्छा सुनिये"—प्रगतिवादी आगे बढ़े—"यदि सत्य का मूल शाश्वत है तो 'सत्य हरिश्चन्द्र' ने जिस सत्य का आदर्श आप के सामने रखा है, क्या उसका पालन आज भी कीजियेगा ? राजा हरिश्चन्द्र 'सत्य' का सबसे बड़ा आदर्श इस लिए है कि उन्होंने ब्राह्मण को दान देने की

लिया। उस पुण्य कार्य के प्रभाव से वे सदेह स्वर्ग चले गए! वे सदेह स्वर्ग इसलिये चले गये कि ब्राह्मण को संतुष्ट करने के लिये उन्होंने अपनी स्त्री तक को बेच डाला! कहिये, यही आदर्श शाश्वत सत्य है? ब्राह्मण के आधिपत्य में यह आदर्श अवश्य शाश्वत सत्य रहा होगा। इस प्रचार का परिणाम है कि आज भी भक्त लोग स्वर्ग प्राप्ति के लिये काशी, हरिद्वार में गोदान तथा पत्निदान करते हैं; चाहे बाद में पत्नी को दो-चार या दस-पांच रुपये में खरीद कर लौटा लेते हैं। कहिये, आज इस आदर्श का पालन कीजियेगा? स्त्रियां भी स्वर्ग जाना चाहती हैं। क्या उन्हें भी अधिकार दीजियेगा कि स्वर्ग प्राप्ति के लिये पति का दान कर दें? खैर, हरिश्चन्द्र सदेह स्वर्ग इसलिये चले गये कि सेवक होकर स्वामिभक्ति का धर्म पूरा करने के लिये, स्वामी के लिये कर उगाहने का धर्म पूरा करने के लिये उन्होंने मृत सन्तान को गोद में लिये, पुत्र शोक में बिलखती माता तक के शरीर से आधी साड़ी फड़वा ली। आज भी मजदूर आन्दोलन को तोड़ने के लिये स्वामिभक्ति के और नमक हरामी द्वारा परलोक न बिगाड़ने के उपदेश दिये ही जाते हैं। हम पूछते हैं, ऐसे धर्म का पालन करने वाले व्यक्ति के लिये आज आप के समाज में कौन स्थान है? और आप उसे किन शब्दों से पुकारियेगा? परन्तु राजा हरिश्चन्द्र को आप आज भी आदर्श मानते हैं और उसकी कथा को साहित्य का शाश्वत सौन्दर्य कहना चाहते हैं। मनुष्य के शोषण को पाप समझने वाला व्यक्ति इस कथा के विषय में क्या कहेगा?"

"दासता के धर्म के प्रचार का इससे अधिक स्पष्ट उदाहरण आप और क्या चाहते हैं?"—कामरेड ने पूछा—"यह प्रचार नहीं तो क्या है? शासक और शोषक श्रेणी के अधिकारों के समर्थन का इससे अधिक नंगा प्रचार आप और क्या देखना चाहते हैं?"

खिन्नता से सिर हिला कर शुद्ध साहित्यिक बोले—"करुणा रस के विपाक की आदर्श इस कहानी में आप करुणा रस का आनन्द न लेकर शोषण का समर्थन देख रहे हैं?"

"अरे आनन्द?"—कामरेड ने उग्र स्वर में विरोध किया—"आप आनन्द की बात कहते हैं? ऐसा अत्याचार सुन कर हमारा तो खून जल जाता है?"

इनकी परवाह न कर शुद्ध साहित्यक अपनी बात कहते गये—"यह आपकी श्रेणी-संघर्ष की हिंसा-वृति का परिणाम है, कहानी का दोष नहीं। वर्ना यह कहानी तो निश्चय ही साहित्य के शाश्वत सौन्दर्य का अति सुन्दर उदाहरण है।"

"ठीक है"—वैज्ञानिक बीच में बोले—"आपको राजा हरिश्चन्द्र की धर्मपरायणता में शाश्वत सौन्दर्य दिखाई देता है और शोषण के विरोधी को दास श्रेणी को बांधने और अत्याचार सहने के लिये विवश करने वाली व्यवस्था की वीभत्सता दिखाई देती है। यह अपनी-अपनी परिस्थितियों और हित के आधार पर बने दृष्टिकोण का अन्तर है।"

सर्वोदयी जी और शुद्ध साहित्यिक ने सिर हिला कर वैज्ञानिक की व्याख्या को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। शुद्ध साहित्यिक बोले—"सौन्दर्य के बारे में दृष्टिकोण का क्या झगड़ा? इसमें श्रेणी का क्या प्रश्न? श्रेणी राजनीति और आर्थिक झगड़ों के क्षेत्र की बात है; सौन्दर्य से उसका क्या सम्बन्ध? जो सुन्दर है, वह चिर सुन्दर है, वह शाश्वत सौन्दर्य है। चांद की रुपहली दूध बरसाती चांदनी और ऊषा की लाली के सौन्दर्य के विषय में दृष्टिकोण का क्या प्रश्न?"

"आप कल्पना कीजिये,"—वैज्ञानिक बोले—"एक बन्दी की कल्पना कीजिये जिसके लिये ऊषा काल में सिर काट देने की आज्ञा दी गई हो। उसे ऊषा की लाली कैसी लगेगी? आपने ईद के मौके पर कुर्बानी का जुलूस तो देखा होगा। बलि के पशु को सजाकर लोग कितनी प्रसन्नता और उत्साह से चलते हैं। उसमें उन्हें अपूर्व सौन्दर्य दिखाई देता है परन्तु क्या बलि के पशु को भी वह सौन्दर्य संतोष-जनक जान पड़ता होगा? ऐसे ही आपके ब्राह्मण-समाज को रुचने वाला सत्य-हरिश्चन्द्र का शाश्वत सौन्दर्य दास समाज के लिये तो शाश्वत अभिशाप ही था।"

शान्त स्वर में सर्वोदयी जी ने उत्तर दिया—"विकृत मनोवस्था की बात दूसरी है……"

"परन्तु किसकी मनोवस्था विकृत है? जो जीवित रहना चाहता है, उसकी? या उसकी जो दूसरों को निगल लेना चाहता है?"—वैज्ञानिक ने टोक कर प्रश्न किया।

अपने विचारों के अनुकूल वातावरण बनता देखकर प्रगतिवादी आगे बढ़ अपनी बगल से एक मोटी पुस्तक निकाल कर बोले—"आप अपने प्राचीन 'शाश्वत' साहित्य में श्रेणिगत सौन्दर्य का दृष्टिकोण देखना चाहते हैं तो प्राचीन साहित्य के प्रतिनिधि कवि कालिदास की रचना में ही देखिये, रघुवंश में महाराज सुदर्शन के अग्नि के समान तेजस्वी पुत्र अग्निवर्ण के जीवन का चित्र देखिये"—पुस्तक खोल वे पढ़ने लगे—"वह कामी राजा कामनियों १ के साथ उन भवनों में दिन रात पड़ा रहने लगा जिनमें बराबर मृदंग बजते रहते थे और प्रतिदिन एक से एक बढ़कर ऐसे उत्सव होते रहते थे कि अगले दिन के उत्सव के धूम धड़ाके के आगे पिछले दिन का उत्सव फीका पड़ जाता था। २ वह सदा रनिवास के भीतर रहकर ही विहार करने लगा। उसके दर्शन के लिये जनता सदा अधीर रहती थी पर वह कभी उनकी सुध न लेता था। ३ यदि कभी मंत्रियों के कहने सुनने से प्रजा को दर्शन भी देता तो बस इतना ही कि झरोखे से एक पैर बाहर लटका देता ४ राज कर्मचारी लाल नखों वाले उसके चरण को नमस्कार कर आराधना करते जो प्रभात की लाल किरणों से भरे हुये कमल के समान सुन्दर था ५।

"कहिये"—टोक कर मार्क्सवादी ने शुद्ध साहित्यिक को सम्बोधन किया—"यह अंध राजभक्ति की प्रशंसा है या नहीं? राजभक्ति का प्रचार है या नहीं?"

और कामरेड राष्ट्रीय की ओर देख गरज उठे—"क्यों साहब, आप इसी संस्कृति का पुनरुत्थान चाहते हैं? ऐसा ही रामराज्य कायम करना चाहते हैं? यह राजा अग्निवर्ण रामचन्द्र जी के ही पूर्वज तो थे न? यही अधिकार प्रजा को रामराज्य में होंगे?"

कामरेड को चुप कराने के लिये उनकी बांह खींच प्रगतिवादी बोले—"और सुनिये, कालिदास अपने 'तेजस्वी' महाराज की प्रशंसा करते हैं—जैसे खिली हुई कमलनियों की गंध से भरे सरोवर में हाथी

---

(१) एक कामिनी के साथ नहीं। (२) सर्ग १६, श्लोक ५.। (३) राजा सुदर्शन महाराज रामचन्द्र के पूर्वज थे। रघुवंश सर्ग १ श्लोक ६। (४) सर्ग १६, श्लोक ७। (५) सर्ग १६, श्लोक ८

हथनियों के साथ बैठता है, वैसे ही अग्निवर्ण भी सुन्दरी स्त्रियों के साथ मद्य के गंध से बसी हुई पानशाला या मदिरा-घर में पहुँचता था १। वहाँ वे स्त्रियां अग्निवर्ण का जूठा मदकारी आसव प्रेम से पीती थीं। जैसे मौलसरी का पेड़ स्त्रियों के मुख से आसव पीने की इच्छा करता है, उसी प्रकार उन स्त्रियों के मुख से आसव पाने की इच्छा करने वाला अग्निवर्ण भी उनके मुंह का आसव पिया करता था २। गोद में बैठाने योग्य दो ही तो वस्तुयें हैं। एक मनोहर शब्द वाली वीणा और दूसरी मधुर-भाषिणी कामिनी। इन दोनों ने राजा की गोद को सदा ही भरपूर रक्खा ३।" और सुनिये—"कभी कभी दासियाँ राजा को मार्ग दिखाती हुई उस स्थान पर ले जातीं जहाँ लताओं के बीच में सम्भोग के लिये फूलों की सेज बिछी रहती थी। उस समय राजा को यह डर होता कि यह दासियां जा कर रानियों से न कह दें। इसलिये राजा दासियों को फुसलाने के लिये उन दासियों से भी सम्भोग करके उन्हें प्रसन्न कर देता ४।"

प्रगतिवादी ने हाथ की पुस्तक बंद की ही थी कि क्रोध की छाया से मलीन मुख महिला जी उठ खड़ी हुईं और बोलीं—"यदि आप लोगों में स्त्रियों के साथ सभा में बैठने लायक सभ्यता नहीं है तो हम यहां नहीं बैठेंगी। हम ऐसी अश्लील बातें सहन नहीं कर सकतीं"—वे विरोध में निष्क्रमण (वाक-आउट) कर जाना चाहती थीं।

श्रीमती जी को आशंका हुई कि प्रोटेस्ट में 'वाक-आउट' न करने से शायद वे कम शर्मीली और असभ्य समझी जायंगी इसलिये वे भी उठ खड़ी हुईं। इस परिस्थिति से लाभ उठा कर सर्वोदयी जी ने शोक प्रकट किया—"आप लोगों को दूसरों की, विशेषकर महिला समाज की कोमल भावनाओं और सम्मान पर आघात नहीं करना चाहिये।.... इस घटना से मेरा मन अति खिन्न हुआ है। जान पड़ता है आप के अपराध के लिये मुझे आज उपवास करना पड़ेगा।"

प्रगतिवादी ने पुस्तक एक ओर पटक दी और क्षमा सी मांगते हुये

---

(१) सर्ग १९, श्लोक ११। (२) सर्ग १९, १२। (३) सर्ग १९, श्लोक १३। (४) सर्ग १९, श्लोक २२।

बोले—"साहब, यह हमने लिखा नहीं और न कालिदास ही प्रगतिवादी थे। हम तो आपको शुद्ध साहित्यिक जी के चिर, सुन्दर और शाश्वत साहित्य का एक नमूना भर दे रहे थे और यदि आप 'कुमार सम्भव' पढ़ें तो इससे सौ गुना 'असह्य' सुन्दर और शाश्वत साहित्य पाइयेगा।"

प्रगतिवादी को फटकारने के मौके से शुद्ध-साहित्यिक भी चूकना नहीं चाहते थे, बोले—"भाई, साहित्य भी मौके-मौके का होता है।"

"सत्यवचन"–इतिहासज्ञ बोले–"हम तो यह कहते ही हैं कि साहित्य मौके-मौके का होता है आप ही उसे शाश्वत बनाते हैं। आपका 'शाश्वत' इस युग के उपयोग की चीज नहीं क्योंकि इस युग में सभ्य स्त्री पुरुष एक साथ बैठते हैं और यह बात तो प्रमाणित हो ही गई कि आज हमारी मध्यम श्रेणी की महिलाओं की आचारनिष्ठा और शालीनता रामराज्य की रानियों से भी बहुत ऊँची है।"

यह बात सुनकर महिला और श्रीमती जी फिर अपने स्थानों पर बैठ गईं। इतिहासज्ञ कहते गये—"उस युग में उच्च वंश की स्त्रियों को हे सुन्दर, हे मोहनी हे नितम्बिनी"....एं क्षमा कीजिये, आई एम सॉरी....कह कर पुकारा जाता था और वे अपना अपमान नहीं समझती थीं। आज यदि किसी महिला को उसके पति की श्रीमती न कह कर उनके अपने नाम से पुकार लिया जाय तो उनका हाथ चप्पल की ओर बढ़ने लगता है—"

"आप हद करते हैं।"—श्रीमती जी ने क्रोध या झेंप से गुलाबी होते चेहरे से टोका।

"जी, अच्छा, यह भी ठीक नहीं"—इतिहासज्ञ ने फिर बात बदली—"मेरा अभिप्राय है कि आज की महिला का व्यक्तित्व उस समय की महिषी के व्यक्तित्व से अधिक उन्नत, विकसित और आत्मसम्मान पूर्ण है। उस समय का साहित्य केवल पुरुषों के भोग के दृष्टिकोण से लिखा जाता था। पुरुषों से समता के अधिकार का दावा करने वाली स्त्रियों के सम्मान के दृष्टिकोण से नहीं!"

"परन्तु आप तो प्राचीन साहित्य में श्रेणिगत दृष्टिकोण दिखा रहे थे"—जिज्ञासु ने प्रश्न किया।

"आपको वह दिखाई नहीं दिया ?" कुछ विस्मय से मार्क्सवादी ने प्रश्न किया—"दो तरह देखिये आप इस साहित्य को। पहली बात, कि यह वर्णन किस श्रेणी और समाज का है ! किस श्रेणी और समाज को यह वर्णन रुचिकर और संतोषप्रद जान पड़ता है। आप को इस वर्णन से आनन्द नहीं आता बल्कि ग्लानि होती है। आप ऐसे सुख का स्वप्न ही नहीं देखते क्योंकि आपकी सौन्दर्य की श्रेणीगत कल्पना इससे भिन्न है। परन्तु हमारे राजा-महाराज लोग आज भी यही करना चाहते हैं ; बस चलने पर करते भी रहे। महाराजा पटियाला, इंदौर, कश्मीर के नाम इसके लिये प्रसिद्ध हैं। तीन पत्नियां होने की कल्पना से आपके रोंगटे खड़े हो जायंगे। महाराजा अपने सम्मान के लिये तीन सौ आवश्यक समझते थे। सौन्दर्य भोग की यह उनकी श्रेणीगत, सामन्तवादी भावना है। अंग्रेज सरकार को उनके इन कारनामों का पता चल जाता था तो वह उन्हे कान पकड़ कर गद्दी से उत्तार देती थी। क्यों कि अंग्रेज सरकार सामन्तवाद की श्रेणीगत नैतिकता और सौन्दर्य की भावना को जहालत समझती थी और पूंजीवादी संस्कृति और आदर्श में आस्था रखती थी। कालिदास के समय का साहित्य राजाधिकार भोगने वाली या सामन्त श्रेणी के नैतिक और सौन्दर्य के आदर्श से राज दरबार के लिये लिखा जाता था और वहां ही इसका रसास्वादन भी होता था—"

बीच में टोक बैठे इतिहासज्ञ—"यहां तक कि काव्य और साहित्य में निम्न श्रेणी का और निम्न श्रेणी के जीवन का चित्रण भी दोष माना जाता था। खेतों में रथ दौड़ा कर शिकार खेलने वाले राजा का वर्णन होना चाहिये था, खेत बनाने और जोतने वाले किसान का नहीं। ऐसे वर्णन से महाराज और सामन्तों को ग्लानि होती थी। जिस चर्खे को आप अपना राष्ट्रीय चिन्ह बनाये फिरते रहे, उस चर्खे का और चर्खा कातने वाली का, उपले थापने वाली का वर्णन उस साहित्य में निषिद्ध था। काव्यादर्श और काव्यदर्पण में लिखा है कि महाकाव्य का नायक धीरोदात्त पुरुष, राजा अथवा देवता होना चाहिए। वह साहित्य निम्न क्या मध्यम श्रेणी के वर्णन को भी निषिद्ध मानता था। वह

राजसत्तावादी समाज था । राजा और उसके सामन्त शासक वर्ग का दृष्टिकोण ही उस समय के समाज का दृष्टिकोण था । वहां वर्णन होता था केवल भोग्य नारियों का, समान अधिकार मांगने वाली नारियों का नहीं । उन राजाओं के गीत गाये जाते थे जिनके भोग के साधन जुटाने के लिये देश की सम्पूर्ण प्रजा उपस्थित थी । जैसे भोग का वर्णन कालिदास ने किया है, क्या वह सर्व-साधारण जनता के लिये सम्भव हो सकता था ?...."

"उस समय ऐसी कंगाली थोड़े ही थी"—राष्ट्रीय ने बीच में टोक दिया—"उस समय देश सम्पन्न था ।"

"सम्पन्न;"—इतिहासज्ञ ने पलट कर पूछा—"तो सभी लोग सौ-पचास रानियां, दूतियां और दासियां रखते थे ? तो साहब, इन दूतियों और दासियों के पति क्या करते होंगे ? जिस समाज में दास प्रथा रही हो, वहाँ समानता और सर्व साधारण प्रजा की स्थिति का प्रश्न क्या ? सर्व साधारण को छोड़िये, यह भोग तो उच्च मध्यम श्रेणी की भी कल्पना के बाहर की बात है और न यह उनका साहित्य ही है ।"

यह सांस लेने के लिये चुप हुये कि शुद्ध साहित्यिक शान्ति मुद्रा में हाथ उठाते हुये बोले—"देखिये, इसीलिये तो हम कहते हैं कि साहित्य भौतिक जीवन का साधन नहीं, सूक्ष्म मानसिक सुख का साधन और स्रोत है । साहित्य के साधन हल, हथौड़ा, सभा और जुलूस नहीं, सूक्ष्म कल्पना है । भौतिक जीवन में संतोष और कल्पना में ऊँची उड़ान ! "प्लेन लिविंग एण्ड हाइ थिंकिंग" ! उनका एक हाथ अपने सिरसे भी ऊँचा उठ गया—"यह है साहित्य का मार्ग ।"

कामरेड ने ऊँचे स्वर में टोक दिया—"यानि, साहित्य ख़ाम ख़याली की पीनक है ?"

"नही,"—भद्र पुरुष बोले—"साहित्य का जीवन से सम्बंध होना तो जरूरी है ।"

शुद्ध साहित्यिक ने अपनी बात को दूसरे शब्दों में दोहराया—"साहित्य का सम्बन्ध जीवन से जरूर है परन्तु सौन्दर्य का सुख केवल

शारीरिक भोग द्वारा ही नहीं, कल्पना द्वारा भी लिया जाता है। यही तो मनुष्य और पशु में अन्तर है। कला का आधार तो कल्पना है, इस सत्य को आप क्यों भूल जाते हैं ?"

"कल्पना के अस्तित्व से इनकार हम नहीं करते"—मार्क्सवादी ने स्वीकार किया—"परन्तु कल्पना मनुष्य के ज्ञान और परिस्थितियों से स्वतंत्र नहीं हो सकती। उदाहरणतः सभी जानते हैं कि ब्रिटिश सम्राट एडवर्ड आठवें को इंगलैण्ड की प्रजा ने, या पूंजीपती श्रेणी ने मिसेज़ सिम्पसन से विवाह करने की आज्ञा नहीं दी। आपको याद है, मिसेज़ सिम्पसन से विवाह करने के लिये सम्राट को अपना सिंहासन छोड़ना पड़ा। क्या सम्राट जहाँगीर या सम्राट चन्द्रगुप्त या महाराज अग्निवर्ण और दुष्यन्त के समय में यह कल्पना की जा सकती थी कि प्रजा सम्राट को किसी स्त्री से विवाह करने से रोक ले ? इस बात की कल्पना केवल प्रजातंत्र के ही युग में की जा सकती है सामन्त युग में नहीं क जा सकती थी, और उदाहरण लीजिये :—

"जिस समाज में विवाह की प्रणाली न हो, वहाँ पतिव्रत धर्म की कल्पना नहीं की जा सकती। जिस समाज में निजी सम्पत्ति और उतराधिकार से वंश की सम्पत्ति पर मिल्कियत का रिवाज़ न हो वहाँ भाग्य से किसी के धनी और निर्धन पैदा होने की कल्पना नहीं की जा सकती। मनुष्य समाज जिस प्रकार के साधनों से अपने निर्वाह और जीवन रक्षा के लिए आवश्यक पदार्थ पैदा करता है उसी के अनुरूप समाज का रूप होता है। यदि पैदावार के साधन सामाजिक सम्पत्ति नहीं होंगे तो अवश्य ही कुछ लोग साधनहीन होंगे और कुछ के पास साधन बहुत अधिक होंगे। यह बात समाज को श्रेणियों में बाँट देती है। पैदावार के लिए श्रम साधनहीनों को करना पड़ता है और पैदावार पर मिल्कियत मालिक श्रेणी की होती है। मालिक श्रेणी सदा ही चाहती है कि पैदावार का अधिक से अधिक भाग अपने पास रखे। श्रम करने वाली श्रेणी अपने निर्वाह के लिये पैदावार का भाग माँगती है। यही संघर्ष की जड़ है। एक समय समाज के पास पैदावार के मुख्य साधन के रूप में केवल भूमि ही थी। उस समय भूमिपति ही समाज के मालिक और शासक थे।

निरंकुश शोषक शासक वर्ग निरंकुश भोग की कल्पना में सुख पायेगा। शोषित वर्ग अपनी मुक्ति के लिये संघर्ष और बन्धनों को तोड़ कर आत्म निर्णय का अवसर पाने की कल्पना से सुख अनुभव करेगा। समान अवसर में विश्वास करने वाला वर्ग ऐसे सुख की कल्पना करेगा जो समाज में सर्व-साधारण के लिये सम्भव हो। इन श्रेणियों के जीवन को चाहे आप व्यक्तिगत क्षेत्र में देखिये चाहे सामूहिक सामाजिक क्षेत्र में, इनकी प्रवृत्ति आपको श्रेणीगत मनोवृत्ति के अनुकूल ही मिलेगी............।"

"और मध्यम श्रेणी के सुख की कल्पना ?"—जिज्ञासू ने टोका।

"वह तो है न—हमें तो शामे ग़म में काटनी है जिन्दगी अपनी.... यह है सुख स्वप्न मध्यम श्रेणी का।"—कामरेड ने उत्तर दिया

शायद सभी लोग इस रूखी बहस से उकता रहे थे। इशारा पाते ही, महफ़िल का मूड देख मौजी ने लरजती हुई पुरदरद आवाज़ में गुनगुनाना शुरू कर दिया। गज़ल के दूसरे शेर पर पहुँचे थे कि श्रीमती जी ने अनुरोध कर दिया—"मौजी साहब, ज़रा खुलकर गाइये"—और मौजी साहब पूरे उत्साह से गा उठे :—

"अगर कुछ थी तो बस ये थी तमन्ना आखिरी अपनी,
कि तुम साहिल पै होते और किश्ती डूबती अपनी।
खुदा के वासते ज़ालिम घड़ी भर के लिये आजा,
बुझानी है तेरे दामन से शमए जिन्दगी अपनी।"

समा बंध गया। शुद्ध साहित्यिक तो झूम गये—"वाह, क्या कल्पना की है; कि डूबते समय किनारे खड़े प्यारे को देखकर ही संतोष हो रहा है! और फिर अपने जीवन का दीपक प्रेमी के आंचल से बुझा कर संतोष पाना! वाह, वाह....कितनी सूक्ष्म कल्पना है और कितनी ऊँची उड़ान। भौतिक भोग की कल्पना ही इसमें कहां है ?"—उन्होंने मार्क्सवादी और प्रगतिवादी को चुनौती दी और विद्रूप से मुस्करा कर बोले—"जाने आपकी यथार्थ और संघर्षवादी कविता क्या होगी ?"

कामरेड कब चूकने वाले थे—"सुन लीजिये"—उन्होंने उत्तर दिया और घूंसा तान कर गर्जन के स्वर में गा उठे—

"एक साथ है कदम जहान साथ है,
कामगार साथ है किसान साथ है।
लीडरो !न गाओ गीत रामराज का,
इस सुराज का,
क्या हुआ किसान कामगार राज का ?
भूख आग है, भूख आग गोलियों से बुझ न पायेगी,
फैल जायेगी।

जेल भेज दोगे ; जेलको जलायेगी,
तख्त ताज, साज बाज सबको खायेगी।
"भूख आग है तुम न समझोगे, बुरी तुम्हारी जात है।"

कामरेड भी गाना जानते थे। आवाज बुलन्द और गहरी थी। कमरा गूंज उठा, जैसे मारू बाजा बज गया हो। सभा बिलकुल दूसरा हो गया। सब चुप्प से रह गये। चुप्पी को तोड़ा मार्क्सवादी ने :—

"बस यह देख लीजिये दोनो तरह के साहित्य का अन्तर ! मध्यम श्रेणी का साहित्य व्यक्तिगत आत्मलिप्ति का साहित्य है, वह स्वान्तः सुखाय की बात कह कर झूठा सन्तोष करता है। उसकी परिस्थिति उसे सुखकी इच्छा और कल्पना का संस्कार और अवसर तो देती है परन्तु साधन नहीं देती। इसलिये वह काल्पनिक आत्मलिप्ति में सुख पाता है। जो चाहता है वह पा नहीं सकता तो न पाने को ही सुख समझना चाहता है। वह श्रृंगार रस का सुख वियोग के रूप में भोगना चाहता है। यह उसकी भौतिक, सामाजिक परिस्थितियों से परास्त मनोवृत्ति और कल्पना है। औद्योगिक समाज के श्रेणी संघर्ष परिणाम है कि मध्यम श्रेणी साधनहीन वर्ग में मिलती जा रही है। परन्तु उसका परम्परागत सफेद पोशी का अहंकार शेष है इसलिये वह ऐसे सुख की कल्पना करती है जिसे साधनों का अभाव न बिगाड़े। यह श्रेणी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात करती है परन्तु अवसर के बिना सदा अभाव से पीड़ित रह कर स्वतंत्रता का अर्थ क्या है ?

"कलाकार और साहित्यिक व्यक्तिवाद की शरण तभी लेता है जब वह सामूहिक जीवन में संघर्ष और असुविधा देखकर मैदान से भागना

चाहता है। जब वह अपनी और अपनी श्रेणी की महत्वाकांक्षा के पूर्ण होने की सम्भावना नहीं देखता तो अभाव को; वियोग को, आत्मरति को ही सुख बताने की दार्शनिकता का दम्भ करता है।

"दूसरी ओर मजदूर श्रेणी अपनी संघशक्ति के साधन से उत्कर्ष और संघर्ष की कल्पना करती है क्योंकि उसका भविष्य उज्ज्वल है, क्योंकि वह जीवन के साधनों को उत्पन्न करने की शक्ति अपने में अनुभव करती है।"

सर्वोदयी जी ने अपनी आतुर और चिन्तित दृष्टि से सब लोगों की ओर देख कर बात बदल दी—'साहित्य में गाली देना' 'बुरी तुम्हारी जात है' कहना घृणा और हिंसा का प्रचार करने की प्रवृत्ति क्या समाज के लिये कल्याणकारी है ?"

छाती ठोक कर कामरेड ने उत्तर दिया—"अवश्य ! हितकर और अहितकर को पहचानना आवश्यक है। जो अहितकर है उसे समाप्त करने के लिये उससे घृणा करना ही चाहिये। जो समाज के लिये हानि-कारक है, जो वास्तव में समाज की हिंसा है उससे प्रेम करने का दम्भ हम नहीं कर सकते। बुरी चीज़ को समाप्त करने के लिये उसके प्रति घृणा ही हमारी शक्ति को जागरित करती है, हमें नैतिक बल देती है। आत्म रक्षा और शत्रु का नाश एक ही उद्देश्य के लिये दो क्रियायें हैं। एक चीज़ को बुरा भी कहना और उससे प्रेम भी करते जाना, केवल दम्भ है, इसका अर्थ है बुरे को फुसला कर उससे समझौता करने की इच्छा।"

"यह ठीक वैसा ही है"—प्रगतिवादी ने जोड़ा—"जैसे उर्दू शायरी में माशूक को जालिम पुकारा जाता है।"

कहकहा समाप्त होने पर जिज्ञासू ने फिर प्रश्न कर दिया—"तो आप आधुनिक प्रगतिशील साहित्य का क्या ध्येय और आदर्श समझते हैं ?"

"प्रगतिशील श्रेणी की भावना की अभिव्यक्ति प्रगतिशील साहित्य है—प्रगतिवादी ने उत्तर दिया—"बीते हुये समय और बीती हुई परिस्थितियों में उपयोगी व्यवस्था का समर्थन करने वाली सत्य

और न्याय की धारणाओं को, जो अब स्वयम् परस्पर विरोधी हो रही हैं बदल कर आधुनिक परिस्थितियों में समाज के लिये विकास का अवसर देने वाली सत्य और न्याय की धारणाओं का समर्थन करना प्रगतिशील साहित्य का काम है। प्रगतिशील साहित्य का काम है समाज के विकास के मार्ग में आने वाली अन्ध-विश्वास और रूढ़ीवाद की अड़चनों को दूर करना, समाज को शोषण के बन्धन से मुक्त करने के कार्यक्रम में प्रगतिशील क्रान्तिकारी सर्वहारा श्रेणी का सबल साधन बनना प्रगतिशील साहित्य का ध्येय है। काल्पनिक सुखों की अनुभूति के भ्रमजाल को दूर कर मानवता की भौतिक और मानसिक समृद्धि के रचनात्मक कार्य के लिये प्रेरणा देना प्रगतिशील साहित्य का मार्ग है।"

"हम सीधी बात क्यों न कहें, — इतिहासज्ञ बोले—"समाज के नेतृत्व और शासन का अधिकार भूमिपतियों के हाथ से पूंजी-पतियों के हाथ आया और अब श्रम करने वालों की बारी है। भूमिपति श्रेणी के साहित्यिकों ने अपनी श्रेणी के हित के अनुकूल व्यवस्था को मान्यता देने और उसकी नैतिकता के प्रचार का काम किया। राजा को ईश्वर मानने की, स्वामी को प्रभु मानने की शिक्षा दी। इस व्यवस्था का उल्लंघन करने से परलोक में दण्ड का भय दिखाया।

"पूंजीपति श्रेणी के अभ्युदय का काल आने पर पूंजीपति समाज के साहित्यिक ने मनुष्यों के समान अधिकारों का, व्यापारिक स्वतंत्रता का, सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार का, प्रजातंत्र का और राष्ट्रीयता का प्रचार किया। पैदावार के साधनों में पूंजी को सर्वोपरि स्थान दिया और पूँजी को ही न्याय और नैतिकता का आधार मानने का प्रचार किया। आज पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था समाज के विकास को आगे ले चलने में, समाज को जीवन रक्षा और विकास का अवसर दे सकने में असमर्थ हो गई है। इस श्रेणी का स्वार्थ समाज के लिये घातक हो रहा है। इसलिये समाज का नेतृत्व पूंजीवादी व्यवस्था के बन्धनों को तोड़ने वाली श्रेणी, सर्वहारा मजदूर श्रेणी के हाथों में जा रहा है।

"इस श्रेणी के साहित्यिक, प्रगतिवादी साहित्यिकका काम है कि

संघर्ष में अपनी श्रेणी को सबल बनाने वाली और समाज की आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल नैतिकता का प्रचार करे, समाज के लिये घातक पूंजीवादी बन्धनों की अनैतिकता और अन्तर विरोध प्रकट करे, साथ ही समाज के कल्याण के लिये प्रगतिशील मजदूर श्रेणी की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था अपने हाथ में लेने के संघर्ष में सहायता दे।"

"यह तो संघर्ष की बात हुई, साहित्य और कला की नहीं!"— इतिहासज्ञ की बात उड़ा देने के भाव से शुद्ध साहित्यिक हाथ उठा कर बोले।

"यदि जीवन संघर्ष है और कला जीवन की भावना की अभि-व्यक्ति तो कला संघर्ष की द्योतक हुए बिना नहीं रह सकती। केवल निरर्थक कला ही संघर्ष द्वारा विकास की भावना और प्रयत्न से शून्य हो सकती है।"—कामरेड ने तीखे स्वर में प्रश्न किया—"क्या कोई कला अभिव्यक्ति शून्य हो सकती है? और अभिव्यक्ति को आप प्रचार नहीं तो क्या कहेंगे?"

शुद्ध साहित्यिक ने एक दीवार पर लटके, संध्याकाश के नीचे सिन्दूरी होते हिमाच्छादित पर्वत शृंगों के चित्र की ओर संकेत कर पूछा—"आप इस चित्र को कला मानते हैं या नहीं? मानते हैं; तो इसे किस बात का प्रचार कहेंगे?"

कामरेड उस सुन्दर चित्र को कलाहीन कहने का साहस न कर सके और चुप देखते रह गये परन्तु मार्क्सवादी ने तुरन्त उत्तर दिया— "यह चित्र कला की सुन्दर कृति है और यह हिमाच्छादित पर्वत शृंगों के सौन्दर्य की आराधना है, उस सौन्दर्य का प्रचार है।"

शुद्ध साहित्यिक उछल पड़े—"बस यही तो, यही तो! यह सौन्दर्य के लिये सौन्दर्य है? आपको मानना पड़ेगा।"—उन्होंने अपनी उंगली मार्क्सवादी की ओर बढ़ा पराजय स्वीकार करने की चुनौती दी।

मार्क्सवादी ने सिर हिलाकर पराजय स्वीकार करने से इनकार कर उत्तर दिया—"यह सौन्दर्य भी सौन्दर्य के लिये नहीं, मनुष्य के ही लिये है...............।"

तीखे स्वर में शुद्ध साहित्यिक ने फिर टोक दिया—"परन्तु इस सौन्दर्य में आपका श्रेणी-संघर्ष कहां है ? इस रचना में कलाकार श्रेणी भावना और श्रेणी-संघर्ष से तटस्थ है या नहीं ?"

मार्क्सवादी ने भी ऊँचे स्वर में उत्तर दिया—"क्या कला केवल इन चित्रों, नदियों और पर्वतों के वर्णनों और चित्रण तक ही सीमित है ? यदि कला की सीमा केवल प्रकृति की शोभा को निहार कर मुग्ध होना ही है, तो आप की बात सही हो सकती है परन्तु प्रकृति को भी भावना शून्य होकर नहीं देखा जा सकता। कालिदास और सुमित्रानन्दन पंत नदी की लहरों की गति देख कर नारी की जाँघ पर से वस्त्र सरकने की कल्पना कर संतुष्ट होते हैं और सोवियत तुर्कमानिस्तान का कलाकार वहीं नदी की धारा को पुकार कर अपने रेगिस्तान के बंजर-प्रदेशों को स्तन-पान करा कर उर्वरा बनाने का अनुरोध करता है। कहिये, प्रकृति की शोभा देखने में मनुष्य के दृष्टिकोण का महत्व रहता है या नहीं ?"

बात बहुत बढ़ चुकी थी। इसलिये वैज्ञानिक ने उसे समाप्त करने के भाव से समाधान किया—"कला का प्रयोजन है, मनुष्य जीवन में सामर्थ्य की वृद्धि और माधुर्य की सृष्टि करना। जीवन में माधुर्य की अनुभूति कर पाने के लिये जीवित रह सकना आवश्यक है। मजदूर श्रेणी की धारणाओं और भावनाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला प्रगतिशील साहित्य सर्वसाधारण के लिये जीवन के अवसर की सम्भावना की मांग करता है। वह समाज के किसी भी व्यक्ति को, (वह आज चाहे पूंजीपति हो या मजदूर) जीवन के साधनों से वंचित नहीं रहने देना चाहता। वह इस संघर्ष के लिये प्रतिज्ञाबद्ध है। इस संघर्ष से विरोध उसी वर्ग को हो सकता है जो अपनी सत्ता की रक्षा सर्व साधारण के साधनहीन और अवसरहीन बने रहने में ही समझता है।"

२

पूंजीवादी व्यवस्था में मुनाफ़ा कमाने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता

अवसरवश उस दिन साहित्यिक जी एक रिक्शा पर सवार हो कर चक्कर क्लब पहुंचे।

सड़क पर से साहित्यिक जी का झुँझलाहट भरा स्वर सुनाई दिया—"तुम्हें बात करने की तमीज़ नहीं?……ऐसे बदतमीज़ी से बात करोगे तो एक झांपड़ देंगे…!"

अनुमान हुआ कि रिक्शावाला शुद्ध साहित्यिक जी को परेशान कर रहा है। मौजी और कामरेड लपक कर उनकी सहायता के लिये बाहर पहुंचे। मामला रफ़ा-दफ़ा कर इन तीनों के भीतर लौट आने पर भी शुद्ध साहित्यिक जी का रोष शान्त न हो सका। वे कहते जा रहे थे—"कैसे बदतमीज़ होते हैं यह रिक्शावाले! भले आदमी की इज्ज़त पर हाथ डालने के लिये तैयार हो जाते हैं……।"

रिक्शा चलाने वाला एक अदना आदमी किसी सफ़ेदपोश का अपमान कर जाय, यह बात राष्ट्रीय जी को बहुत बुरी लगी—"बदतमीज़ी कर रहा था तो आप ने एक झाँपड़ क्यों नहीं दिया……को?" राष्ट्रीय जी अपनी आस्तीन चढ़ा कर क्रियात्मक क्रोध प्रकट करने के लिए गरज उठे।

एक भले आदमी का अपमान होने की बात सभी को बुरी लगी। माथे पर त्योरी डाल कर इतिहासज्ञ ने प्रश्न किया—"आख़िर बात थी क्या?…क्या बदतमीज़ी की उसने?"

सहानुभूति और समर्थन पाने के कारण शुद्ध साहित्यिक जी का क्रोध और भभक उठा। ऊँचे स्वर में बोले—"अजी बदतमीज़ी वह क्या करता? कहने लगा, छः आने तुमने कैसरबाग़ के कहे थे! हमने कहा—तू-तड़ाक का क्या मतलब? तुम्हें जो मांगना है, अदब से माँगो!"

"अरे!"—उपेक्षा प्रकट करने के लिए कामरेड बोल उठे—"बस इतनी ही बात थी! हम तो समझे थे कि रिक्शावाला साहित्यिक जी की शारीरिक कोमलता का अनुचित लाभ उठाने की इच्छा से इनकी सफेदपोशी पर दाग लगा देने की धमकी देकर छः आने की जगह दस आने लेने की कोशिश कर रहा है।"

शुद्ध साहित्यिक जी और भी बिगड़ उठे—"भाड़ में गये तुम्हारे छः आने और दस आने!....तुम्हें हर बात में आर्थिक दृष्टिकोण ही दिखाई देता है। चार आना पैसा बड़ा है या आदमी की इज्ज़त?"

कामरेड झेंपने के बजाय हँस दिये—"साहित्यिक जी, आप भी तो रिक्शा वाले से 'तू-तड़ाक' कर रहे थे, उसे झाँपड़ मारने की धमकी दे रहे थे...?"

राष्ट्रीय जी उत्तेजित होकर बीच में चिल्ला उठे—"यानी, एक भला आदमी और कुली कबाड़ एक हो गये! आग लगे इस कामरेडी और समाजवाद में। समाज में किसी की इज्ज़त और आदर कुछ नहीं रहा।"

कामरेड शायद साहित्यिक जी को खिझाने पर तुले हुए थे। फिर बोल उठे—"आदर तो साहित्यिक जी को रिक्शावाले का करना चाहिए था। वह इन्हें कमर पर घसीट कर इतनी दूर लाया। इन्हें चाहिये था, उसे धन्यवाद देते! उल्टा यह उम्मीद कर रहे हैं कि वह दामों के लिये इनके सामने गिड़गिड़ाता और इन्हें सलाम करके जाता। साहित्यिक जी किस नाते आदर के अधिकारी हैं? क्या इसलिये कि चल नहीं सकते?........अपाहिज होने का क्या आदर?"

"अपाहिज हो तुम!"—साहित्यिक जी बहुत क्रुद्ध हो गये—"जो पचहत्तर रुपल्ली माहवार पर अपने आपको बेचते हो। हम तुम्हारे जैसे दस को नौकर रख सकते हैं।"

कामरेड ने कहकहा लगा कर अधिक कड़वी बात कहने के लिये मुँह खोला था कि मार्क्सवादी ने इन्हें रोकने के लिये उनका हाथ थाम लिया और बोले—"साहित्यिक जी सुनिये, अभी आप बिगड़ रहे थे कि कामरेड को हर बात में आर्थिक दृष्टिकोण ही दिखाई देता है। अब आप स्वयम ही आर्थिक आधार पर अपने अधिक समर्थ होने और आदर के अधिकारी होने का एलान कर रहे हैं। इसी अधिकार से आप रिक्शावाले से भी सलाम की आशा करते हैं। यह आदर मनुष्य का या उसकी उत्पादक शक्ति का नहीं, समाज की व्यवस्था पर शासन करने वाली पूंजी का ही है·······।"

सर्वोदयी जी अपना हाथ, भगवान बुद्ध की तरह शान्ति-मुद्रा में ऊपर उठा कर टोक बैठे—"धन और माया का आदर आप लोगों की भौतिकतावादी पश्चिम की सभ्यता और संस्कृति का परिणाम है। हमारी संस्कृति में तो सदा त्याग का ही आदर होता आया है। हमारे देश में तो बनों में तपस्या करने वाले रिषियों ही का आदर था। रिषि लोग चक्रवर्ती महाराजाओं के माथे पर अपने पांव के अंगूठे से तिलक कर देते थे और राजा लोग अपने आप को धन्य समझते थे। हमारे देश में 'बापू' से अधिक आदर किसका·······"

वैज्ञानिक ने तिलमिला कर टोक दिया—"जो व्यक्ति दूसरे के माथे पर अपना पांव लगाने की धृष्टता करता है, उसे आप त्यागी कहेंगे? जो व्यक्ति अपने पाँव को दूसरे व्यक्ति के माथे से अधिक पवित्र समझता है, उससे बढ़कर अहंकारी और दम्भी कौन होगा? इस अहंकार और दम्भ को आप त्याग कह सकते हैं?-" वे सांस लेने के लिये रुके ही थे कि इतिहासज्ञ बोल उठे—

"प्राचीन काल में रिषियों का आदर इसलिये नहीं होता था कि वे भूखे मरते थे या उनके पास आवश्यकतायें पूरी करने के साधन नहीं थे। जिन रिषियों को राजा लोग सोने से सींग मढ़ी सौ-सौ गौएं और पालकी ढोने वाले दास और दासियां भेंट में देते थे, उनकी ग़रीबी और निर्धनता की बात करना मिथ्या ढोंग है। रिषियों का आदर इसलिये था कि वे न हल जोतते थे और न सिर पर बोझ

उठाते थे। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं की पैदावार के लिए उन्हें कोई श्रम नहीं करना पड़ता था। परन्तु इनकी आवश्यकतायें अपूर्ण नहीं रहती थीं, क्योंकि वे उस शासन व्यवस्था में साझीदार थे।"

"क्या कहे चले जा रहे हैं आप!"—राष्ट्रीय जी खिन्न स्वर में बोल उठे—"कणाद जैसे रिषि जो खेतों में गिरा अन्न बटोर कर निर्वाह करते थे?...और श्वेतकेतु बेचारे तो भूख से व्याकुल होकर आक के पत्ते खाकर अंधे हो गये! और आप बता रहे हैं कि रिषि लोग पालकियों पर सवारी करते थे।"

इतिहासज्ञ अधिक तीखे स्वर में बोले—"कणाद जी महाराज यदि खेती के लिए मेहनत न कर दूसरों के खेतों में गिरे अन्न के दाने चुगते फिरते थे तो यह उनकी अपनी सनक रही होगी। लेकिन आप जानते हैं रिषियों की आवश्यकतायें पूरी करना, उनकी सेवा करना राजाओं और सेठों का कर्त्तव्य समझा जाता था। यदि कणाद जी महाराज अपनी सनक से दुख उठाते रहे तो किसी दूसरे का इससे क्या भला हुआ?"

उत्तेजना से सवादयी जी के हाथ और नेत्र विस्मय की मुद्रा में फैल गये और उन्होंने ऊँचे स्वर में प्रश्न किया "किसी का क्या भला हुआ?...अरे, आप क्या कह रहे हैं? हमारे रिषि लोग जो अमर ज्ञान इस देश को उत्तराधिकार में दे गये हैं, उसे आप कुछ समझते ही नहीं? अरे वही तो मनुष्य के जीवन का वास्तविक तत्त्व है, वही तो मनुष्य-जीवन में शान्ति का मूल और शाश्वत सूत्र है।"

हाथ हिलाकर ऊँचे स्वर में वैज्ञानिक बोले—"बहुत अच्छा, यदि रिषि लोग आप को मनुष्य-जीवन की वास्तविक सफलता का नुसखा दे गये हैं तो देश की इस कठिनाई के समय, भूखी और नंगी, हाय-हाय करती जनता के दुख का उपाय आप रिषियों के बताये नुसखे से क्यों नहीं करते? इस ब्रह्म-ज्ञान द्वारा आज तक कितने आदमियों ने कष्टों से मुक्ति पायी है? रिषियों से पाये ब्रह्म-ज्ञान द्वारा मनुष्य-समाज की कौन आवश्यकता पूरी हुई है? भौतिक ज्ञान ने मनुष्य-समाज की उन्नति में जो सहायतायें दी हैं, मनुष्य को जैसे प्रकृति पर विजय

पाने योग्य बनाया है; वह आप के सामने हैं। ब्रह्म-ज्ञान ने मनुष्य समाज के लिये या इस ब्रह्म-ज्ञानी देश के लिये क्या किया है…।"

सर्वोदयी जी इन्हें फिर टोक बैठे—"प्रकृति पर विजय ?…यह आप के भौतिकवाद का झूठा अहंकार है ? क्या आपने मृत्यु को जीत लिया है ? क्या आप अपनी इच्छा से रितुओं को बदल सकते हैं ? बिना पृथ्वी के अन्न उत्पन्न कर सकते हैं ? मृत्यु को जीता था हमारे रिषियों ने, जिन्हें मृत्यु का भय ही नहीं रहा था ?"

उनसे भी तीखे और अधिकार पूर्ण स्वर में उत्तर दिया मार्क्सवादी ने—"आप के रिषियों ने मृत्यु को जीत लिया होता तो आज आप को उनकी झूठी वकालत करने की आवश्यकता न पड़ती। वे स्वयम ही यहां बैठे होते। एक दिन मृत्यु आयेगी, इस भय से समाज के प्रति अपना कर्त्तव्य छोड़ कर जंगल में जा बैठना मृत्यु पर विजय नहीं, मृत्यु का उग्र भय है; सदा मृत्यु की ही बात सोचते रहना है। भौतिक ज्ञान ने अवश्य मृत्यु को पराजित किया है। जिन अनेक रोगों को आप केवल ईश्वर की इच्छा और असाध्य समझते थे, आज वे कितनी सरलता से बश में आ जाते हैं। साधन होने पर निमोनिया और टाइफ़ाइड आज चुटकी बजाते ठीक होते हैं, मलेरिया और हैजे को आज आप फैलने से रोक सकते हैं, नदियों की दिशा बदल सकते हैं, हवा में उड़ सकते हैं, महामारी और बाढ़ का उपाय कर सकते हैं, बंजर मरु भूमि को उपजाऊ बना सकते हैं, योरुप में मौजूद पशुओं को यहां लाये बिना उनकी नस्लें यहां पैदा कर सकते हैं, अपने मकानों में अपनी इच्छानुसार गरमी-सरदी पैदा कर सकते हैं। प्रकृति पर विजय पाने का अर्थ 'प्रकृति को बदल देना नहीं, इसका अर्थ है, मनुष्य को कुचल देने वाली प्रकृति को मनुष्य के लिये उपयोगी और मनुष्य की सेविका बना देना…"

सर्वोदयी जी फिर टोक बैठे—"परन्तु क्या इससे समाज में शांति हो गयी ?"

कामरेड ने बिगड़ कर उत्तर दिया—"आपके रिषियों की शान्ति का तो आदर्श था, अजगर करे न चाकरी कागा करे न काम, दास

मलूका कह गये सब के दाता राम ! आपके रिषि और राजा, प्राचीन शासक और शोषक समाज के मुखिया थे । वह समाज के लिये पैदावार के कोई श्रम नहीं करते थे । श्रम से पैदावार करने वालों · लुहार, चमार, बढ़ई, धोबी, माली, तेली, जुलाहे और कृषक का न कोई आदर था न अधिकार । वे सब अन्त्यज और शूद्र कहे जाते थे और उनका धर्म था केवल सेवा करना, पदार्थों को पैदा करके मालिकों को सौंप देना । द्विज शोषक श्रेणी उत्पत्ति के साधनों भूमि की मालिक थी और शस्त्रों की शक्ति से भूमि पर अधिकार रखती थी । यह श्रेणी श्रम करने वालों को विश्वास के बंधन और शस्त्र के दबाव से अपने आधीन रख कर, उनकी मेहनत का फल खाकर ब्रह्म-ज्ञान का सुख भोगती थी । यही था ब्रह्म-ज्ञान का मूल मन्त्र ; द्विज लोग इस ब्रह्म-ज्ञान का अधिकार अपनी श्रेणी के अतिरिक्त किसी दूसरे को देने के लिये तैयार न थे । इस व्यवस्था में श्रम जबरदस्ती कराया जाता था और श्रम का अपमान था । मान था, सम्पत्ति और भोग के अधिकार का ! वही मन्त्र, (ईश्वर की प्रेरणा के नाम से मेहनत करनेवाले वर्ग पर शासन रखने का मंत्र) आप फिर लागू करना चाहते हैं । परन्तु अब श्रम करने वाला वर्ग सचेत हो रहा है । वह अपनी नैतिकता और न्याय की स्थापना करना चाहता है । समाज का पालन सम्पत्ति नहीं, श्रम करता है । श्रम ही सम्पत्ती को भी उत्पन्न करता है । श्रमिक वर्ग समाज से सम्पत्ति का शासन हटा कर श्रम का शासन, श्रम की मान्यता स्थापित करना चाहता है ।"

दुहाई देने के भाव में दोनों हाथ फैलाकर और सब लोगों की ओर समर्थन की प्रार्थना से देख कर सर्वोदयी जी बोले—"सम्पत्ति के लिये लोभ और संघर्ष फैला कर सम्पत्ति की दासता का प्रचार तो आप भौतिकवादी लोग ही करते हैं । बापू ने तो सम्पत्ति को ठोकर मारने का ही आदर्श पेश किया है परन्तु आपका समाजवाद आर्थिक संघर्ष और श्रेणी संघर्ष को ही सब कुछ समझता है । कौन बढ़ाता है सम्पत्ति की दासता को ?

"सम्पत्ति को ठोकर मारने का प्रचार केवल प्रवंचना है"—मार्क्सवादी ने गम्भीर और ऊँचे स्वर में विरोध किया—"सम्पत्ति का अर्थ

है, जीवन-रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थ, इन पदार्थों को प्राप्त करने के साधन और अवसर। सम्पत्ति का रूप चाहे जो हो, उसके बिना व्यक्ति और समाज किसी का भी जीवन सम्भव नहीं। जीवन-रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थों को आप स्वयं पैदा करें, चाहे माँग लें, या डाका मार कर लायें, या कोई उन्हें आप के चरणों में भेंट कर दे, जीवन उन्हीं से चलता है। जीवन रक्षा के लिये आवश्यक साधनों को पाने की चेष्टा व्यक्ति और समाज के जीवन की स्वाभाविक और आवश्यक गति है। जीवन-रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थों को पाने में जितनी कठिनाई होगी, उतना ही विकट संघर्ष उनके लिये होगा। इस संघर्ष का कारण पूँजीवाद द्वारा उत्पन्न विषमता है। समाज की वर्तमान अवस्था में आर्थिक संघर्ष को रोकने के प्रयत्न का प्रयोजन है कि समाज में सम्पत्ति पर अधिकार की और समाज में होने वाली पैदावार के बटवारे की जैसी व्यवस्था है उसमें परिवर्तन न हो। आपको मानना ही पड़ेगा कि आज समाज में आदर और अधिकार का अवसर सबके लिये समान नहीं। जिसके हाथ में सम्पत्ति के स्वामित्व का जितना अवसर और अधिकार है, उतनी ही उसकी सामर्थ्य और शक्ति है। समाज में समता और समान अवसर, सहृदयता और हृदय-परिवर्तन के उपदेश से नहीं जीवन के साधनों पर सब लोगों का अधिकार समान रूप से होने से ही हो सकता है। समाज में विषमता और असमान अवसर का कारण मनुष्यों के दुर्गुण नहीं, समाज की परिस्थितियाँ ही हैं। परि-स्थितियों और व्यवस्था के बदलने से ही मनुष्यों के सद्गुण पनप सकेंगे। सामाजिक न्याय के लिये आवश्यक है कि जिन लोगों ने समाज द्वारा उत्पन्न की गयी सम्पत्ति का दूसरों का भाग छीन कर अपने अधिकार में कर लिया है, उनके अन्याय को समाज की सामुहिक शक्ति द्वारा दूर कर समाज के पैदावार के साधनों पर सम्पूर्ण समाज का या पैदावार के लिये श्रम करने वालों का समान अधिकार स्वीकार किया जाये......."

सर्वोदयी जी ने तत्परता से चेतावनी में उंगली खड़ी कर साव-धान किया—"यह आप क्या कह रहे हैं? न्याय और समता के नाम

पर आप सामुहिक डाकेजनी और हिंसा का प्रचार कर रहे हैं! सम्पत्ति के स्वामियों और संरक्षकों से सम्पत्ति को सामुहिक शक्ति से छीनने का अर्थ डाकेजनी और हिंसा नहीं तो क्या है ?"

"चोर से चोरी का माल बरामद कर लौटा लेना क्या चोरी और हिंसा है ?"—कामरेड ने मुक्का उठा कर फर्श से बालिस्त भर उचक कर पूछा।

प्रायः सभी लोगों के चेहरों पर विस्मय का भाव आ गया। शुद्ध साहित्यिक जो इस विवाद को अपनी ही आलोचना समझ कर अब तक चुप बैठे थे परन्तु अब पूछ बैठे—"चोर से चोरी का माल बरामद करने का मतलब ?"

कामरेड से पहले बोल उठे इतिहासज्ञ—"बड़े भारी फ्रेंच विद्वान प्राधों का कहना है, 'सम्पूर्ण सम्पत्ति चोरी है।' समाज में शान्ति चाहने वाले हमारे पूर्वज ऋषियों ने भी सम्पत्ति संचय करना पाप बताया था। मतलब यही था कि सम्पत्ति को समाज सामुहिक रूप से उत्पन्न करता है, उसे व्यक्तिगत रूप से दबा लेना चोरी है.......

इनके मुँह की बात ले वैज्ञानिक ने कहा—"समाज में पैदावार तो श्रम से ही होती है। यदि सब लोगों को श्रम करने का समान अवसर हो और सब लोग अपने श्रम का फल खर्च कर सकें तो किसी के पास दूसरों की अपेक्षा लाखों गुणा अधिक धन-सम्पत्ति जमा हो जाने का कोई कारण हो नहीं सकता। यदि किसी के पास दूसरों की अपेक्षा हज़ार-लाख गुणा सम्पत्ति है, कोई हज़ारों आदमियों की श्रम-शक्ति खरीद सकता है, उन्हें अपने काम के लिये नौकर रख सकता है तो यह सम्पत्ति उसके पास निश्चय ही दूसरों का श्रम हथिया लेने के कारण ही जमा हो सकी है।"

वैज्ञानिक की बात अस्वीकार करने के लिये भद्रपुरुष सिर हिला कर बोले—"पैदावार या सम्पत्ति को श्रम ही नहीं पैदा करता! किसी मिल में दस हज़ार मजदूर काम कर सकें, मिल में अपनी मेहनत लगा सकें, इसके लिये पहले मिल का या मिल बनाने लायक सम्पत्ति का होना जरूरी है। आप सम्पत्ति के महत्व को कम नहीं कर सकते ?"

अपनी बात पर अड़ने के लिये इतिहासज्ञ ने कहा—"सम्पत्ति का महत्व है; परन्तु सम्पत्ति है क्या ? सम्पत्ति केवल पदार्थों के रूप में जमा किया गया श्रम का फल ही तो है। कपास पैदा करने में और कपड़ा बुनने में जो श्रम होता है, उसी के कारण कपड़े का मूल्य है, और कपड़ा सम्पत्ति बन जाता है। सम्पत्ति को सुविधा से जमा करने के लिये आप रुपयों में बदल लेते हैं कि अवसर पर इस रुपये से दूसरे आदमी के श्रम से पैदा पदार्थ या उसकी श्रम-शक्ति खरीद सकें।

एक जमाने में मिलें और कारखाने नहीं थे। आदमी की श्रम करने की शक्ति उस समय भी थी। उसी श्रम-शक्ति का फल संचय होते-होते कारखानें और मिलें बन सकी हैं, या पैदावार के साधनों के रूप में सम्पत्ति जमा हो सकी है। आज सम्पत्ति स्वयं पैदावार का बड़ा भारी साधन बन गई है और सम्पत्ति का मालिक इस शक्ति से समाज की पैदावार की व्यवस्था पर शासन कर रहा है। उसने सम्पत्ति के रूप में पैदावार के सम्पूर्ण साधनों पर अधिकार कर लिया है। एक समय शोषक शासक पैदावार के साधनों (मुख्यत: भूमि या जंगलों) को शस्त्र-शक्ति से अपने वश में रख कर मेहनत करने वाली श्रेणी के श्रम का फल भोगते थे। आज आर्थिक और औद्योगिक विकास की अवस्था में सम्पत्ति की मालिक श्रेणी पैदावार के नये उत्पन्न हो गये साधनों पर अधिकार करके समाज का आर्थिक व्यवस्था को अपने वश में किये है। कोई भी साधनहीन व्यक्ति, जो अपने श्रम का एक भाग मुनाफे के रूप में पूंजीपति को न दे, पैदावार करने का अवसर नहीं पा सकता। पूँजीवादी व्यवस्था में शासन और सरकार का अधिकार स्वयम पूँजीवादी श्रेणी के हाथ में होने के कारण पूँजीपति श्रेणी सीनाजोरी से अपना मुनाफा कहकर श्रमिक श्रेणी के श्रम के फल में से चोरी करती है।

समाज द्वारा की गयी सामुहिक पैदावार मुनाफे के नाम से पूँजीपति श्रेणी के हाथ में जमा होते जाने का परिणाम यह है कि पूँजीपति श्रेणी पैदावार के साधनों और आर्थिक व्यवस्था पर अपना शासन बढ़ाये जा रही है, उनकी समाज के श्रम की यह चोरी मुनफे के रूप में बढ़ती

ही जा रही है और श्रम करने वाले लोग श्रेणी रूप से दिन-दिन पराधीन और निस्सहाय होते जा रहे हैं।"

वैज्ञानिक की इस लम्बी वक्तृता के उत्तर में सर्वोदयी जी चेहरे पर करुणा और यातना का निरीह भाव लाकर बोले—"मुनाफे को आप चोरी कैसे कह सकते हैं ? मालिक के मुनाफे को चोरी बताना आपकी ईर्षा और हिंसा वृत्ति का परिचायक है। आप को पूँजीपति श्रेणी से द्रोह है, इसलिए आप उनके श्रम के फल को चोरी कह कर अपना द्वेष प्रकट करते हैं। जैसे और धन्दों के लोग, वकील, डाक्टर और कलाकार अपने विशेष श्रम का फल पाते हैं, उसी प्रकार पूँजीपति भी अपने श्रम का फल पाता है। आप यह नहीं देखते कि पूँजीपति लोग समाज के लिए आवश्यक पदार्थ पैदा करने के लिए अपनी पूँजी जोखिम में लगाते हैं। यह जोखिम सहने का फल क्या उसे कुछ नहीं मिलना चाहिए ? [illegible] ने किसान-मजदूर जनता के प्रति दया और सहानुभूति का उपदेश दिया है परन्तु मालिक के अधिकारों की रक्षा को भी न्याय बताया है। अन्याय किसी के भी प्रति हो, अन्याय ही है।"

सर्वोदयी जी की बात पर खिन्नता प्रकट करने के लिए जोर से सिर हिलाकर इतिहासज्ञ ने विरोध किया—"यह मालिक के अधिकार की बात एक ही रही। अब तक जमींदार-मालिक को बेगार लेने का अधिकार रहा है, कुछ समय पहिले तक ठाकुर लोग अपनी प्रजा में कोई विवाह होने पर नववधु पर पहली रात अपना अधिकार समझते थे, दक्षिण के धर्मपरायण लोगों में नववधु पर पहली रात नम्बूदरी ब्राह्मण का अधिकार रहा है, मालिक गुलाम के प्राणों पर अपना अधिकार समझते थे, औरंगजेब हिन्दुओं से जजिया * लेना अपना अधिकार समझता था ; इन सब अधिकारों की रक्षा कीजियेगा ? जिसके हाथ जितनी शक्ति, उसके उतने अधिकार ! जिसके हाथ शक्ति उसी के हाथ भगवान ! जिस समय समाज में पैदावार के साधनों पर शस्त्र-शक्ति से नियंत्रण रखा जा सकता था, सौ या हजार आदमी लेकर हथियारों

---

* हिन्दू बने रहने का कर।

के जोर से भूमि छीन लेने वाले लोगों के ही सब अधिकार थे। निजाम के पूर्वज हैदरअली, टीपू सुल्तान और महाराजा रणजीतसिंह इसी अधिकार से महाराज बन गये। * उन्हे राजा महाराजा कह कर सम्पूर्ण प्रजा और साधु सन्त उनके सामने सिर झुकाते थे, उन लुटेरे डाकुओं को ही भगवान का प्रतिनिधि कह दिया जाता था। राजा या ठाकुर अपनी प्रजा की श्रम की कमाई का जितना भाग चाहता था, ले लेता था। मालिक लोग अपने दासों को कोड़े मार कर, मौत का भय दिखा कर जो सेवा चाहते थे, करा लेते थे। समाज में पैदावार के साधनों का विकास हो जाने पर पैदावार की व्यवस्था में पूँजी की प्रधानता हो जाने पर, पैदावार के साधनों को पूँजी से वश में रखने वाली श्रेणी जनता के श्रम को मुनाफे के रूप में छीन लेती है। साधन-हीनों को आर्थिक व्यवस्था से मजबूर कर उनकी पीठ पर चढ़ा जा सकता है, उनसे अपना पाखाना उठवाया जा सकता है ? उनकी बहू-बेटियों को अपने विनोद के लिये कोठों पर बैठा सकते हैं। यदि वे ऐसा न करें तो भूखी मरें। आप को अहंकार है कि आप मर जायेंगे पर ऐसा काम नहीं करेंगे। परन्तु साधनहीनों को भूखा रख कर आप उनसे सब कुछ करवा सकते हैं, करवाते ही हैं। एक दो आदमी अपने अहंकार या अपनी आन पर मर कर दिखा सकते हैं परन्तु पीढ़ी-दर-पीढ़ी कोई जाति अड़ नहीं सकती। उसे अपना जीवन परिस्थितियों

---

* महाराजा रणजीतसिंह ने मुसलमान शासक से लाहौर का राज छीनने के साथ ही उससे कोहनूर हीरा भी छीन लिया था। अंग्रेज़ राजदूत ने जब रणजीतसिंह से इस हीरे का दाम पूछा तो रणजीतसिंह ने उत्तर दिया—इस हीरे का दाम है 'दस जूते'। जो दस जूते मार सकता है, इस हीरे को छीन सकता है। आज यह नैतिकता मान्य न होगी। आज कहा जायगा, जो पांच करोड़ रुपया दे सकता है, हीरे को ले सकता है। यह है शस्त्रों की अपेक्षा पूँजी की मान्यता, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अब भी शस्त्र-शक्ति, एटम बम की ही मान्यता है। मनुष्य अभी तक व्यक्तिगत रूप से ही (समाजवादी रूस में सामाजिक रूप से भी) सभ्य हो सका है; परन्तु अंतर्राष्ट्रीय रूप से बर्बर ही है।

के अनुकूल ढालना ही पड़ेगा। पूँजीपति श्रेणी शौक से व्यभिचार करती है, साधनहीन श्रेणी पेट के लिये व्यभिचार सहती है। पूँजीपति श्रेणी की इस शक्ति का भेद यही है कि जीवन-रक्षा के लिए आवश्यक पदार्थ उत्पन्न करने के साधन उसके हाथ में हैं। जो लोग अपने श्रम का भाग मुनाफ़े के कर के रूप में उन्हें नहीं देंगे, उन लोगों को मालिक श्रेणी पेट भरने के लिये श्रम का अवसर नहीं देगी। यह है 'पूँजीवादी-प्रजातंत्र' मेहनत करने वाली मजदूर श्रेणी और सफ़ेद पोश मध्यम श्रेणी पर निरंकुश शासन ! मुनाफ़ा कमाने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता ही पूँजीवादी शासन को कानूनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समानता है इसका अर्थ है, जो चाहे मुनाफ़े की कानूनी-चोरी से पैदावार के साधनों पर अधिकार करके दूसरों के श्रम का फल चूसता जाय......."

बहुत देर से चुप जिज्ञासु प्रश्न कर बैठे—"कानूनी-चोरी कैसे ?"

इतिहासज्ञ ने और भी उग्र स्वर में उत्तर दिया—"जैसे किसी जमाने में औरंगजेब का हिन्दुओं से जज़िया लेना और दासों के स्वामी का अपने दासों की सुन्दर पुत्रियों को अपने बिस्तर में डाल लेना कानूनी था, वैसे ही दूसरे के श्रम का फल हथिया लेना आज कानूनी है। क्योंकि आज समाज का शासन और शस्त्र शक्ति पूँजीपति के हाथ में है। शासक श्रेणी शस्त्र-शक्ति के बल पर अपने स्वार्थों को कानून का नाम दे देती है। सुनिये, कुछ बरस पहले तक शर्त बन्द-मजदूरी (Indentured Labour) * कानूनी थी, आज नहीं रही। कानून कोई शाश्वत वस्तु नहीं है। जिस श्रेणी के हाथ शक्ति होगी, वह अपने हित के अनुसार कानून बना लेगी।"

इतिहासज्ञ का प्रभाव जमता देख कर सर्वोदयी जी अपनी पीठ पर तन कर टोक बैठे—"कानून से बड़ी चीज है नैतिकता !"

---

* भारत और दूसरे उपनिवेशों से मज़दूरों को शर्तनामा लिखा कर निश्चित वर्षों के लिये निश्चित मजदूरी पर भर्ती किया जाता था और उन्हें अपने देश न लौटने देकर उनके साथ गुलामों जैसा व्यवहार कर मनमानी मेहनत कराई जाती थी। इस अन्याय के विरुद्ध संसार-व्यापी घोर आन्दोलन होने के बाद यह प्रथा अब कानूनन बन्द हो गयी है।

"शोषक भी नैतिकता का दम्भ करता है ?" बहुत विस्मय प्रकट कर वैज्ञानिक ने चुनौती दी—"किसी का धन चुराना, किसी से पैसा ठग लेना अनैतिक है या नहीं ? धन या पैसा बनता है श्रम से। श्रम ही वास्तव में धन है। श्रम की शक्ति जब तक मजदूर के शरीर में रहती है, उसका मुनाफे के रूप में चुरा लेना या ठग लेना नैतिकता है, कानूनी व्यापार है और जब श्रम-शक्ति का फल पैसे का रूप लेकर पूँजीपति की जेब या तिजोरी में चला जाय, उसका चुरा लेना या ठग लेना अनैतिक है, चोरी है, डाका है ! यह है पूँजीवादी कानून जो श्रम को अपमानित करता है, लूट की चीज समझता है और पूँजी को पवित्र बना लेता है। क्योंकि पूँजीपति या मालिक श्रम नहीं करता इसलिये अपने शासन में वह सदा श्रम-शक्ति को अधिकारहीन और निर्बल बनाये रखता है, श्रम का अपमान करता है, श्रम न करने को आदर का लक्षण बना देता है। शोषक श्रेणी के प्रतिनिधि ऋषि यह उपदेश तो दे गये कि—'मागृधः कस्य स्विद्धनम्' * परन्तु उन्होंने यह नहीं कहा कि 'मागृधः कस्यचिद्-श्रमम् ।' × क्योंकि श्रम वे करते नहीं थे । कोई उनका श्रम क्या लेता ? इससे भी अधिक चतुरता उन्होंने यह की, जनता को समझाया—"कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन—" = अर्थात् तुम मेहनत करते जाओ। इस बात की चिन्ता न करो कि फल मिलता है या नहीं ! कारण यह कि कर्म का फल तो वे स्वयं खा लेना चाहते थे। श्रम के राज में, समाजवादी शासन में पूँजी को मुनाफे के रूप में दूसरे का श्रम हथिया लेने का अवसर नहीं रहेगा। जैसे पूँजीवादी शासन में पूँजी की चोरी अपराध है ÷ वैसे ही रूस के समाजवादी शासन में दूसरे के श्रम की चोरी अपराध है। यह है समाजवादी, श्रम की नैतिकता ! दूसरी ओर है मुनाफे को न्याय मानने वाली आपकी पूँजीवादी सरकार

* "किसी का धन लेने की इच्छा मत करो"—ईशोपनिषद

× "किसी का श्रम लेने की इच्छा मत करो !"

=—"तुम्हें कर्म करने का ही अधिकार है, फल का नहीं"—गीता।

÷ रूस के समाजवादी विधान के अनुसार मुनाफा या दूसरे के श्रम का भाग लेने वाले व्यक्ति नागरिक अधिकारों से वंचित समझे जाते हैं।

की नैतिकता जो मजदूर श्रेणी से उनके श्रेणीगत संगठन द्वारा उनके एकमात्र हथियार हड़ताल से अपने श्रम की लज्जाजनक लूट का विरोध करने का भी अवसर छीन लेती है। इस सरकार के लिये पूँजीपति का मुनाफ़ा, पूँजी की बढ़ती ही राष्ट्रीय उद्देश्य है........।"

जिज्ञासु ने फिर टोक कर प्रश्न किया—"राष्ट्र के औद्योगी करण के लिये पूँजी की आवश्यकता है। पूँजी मुनाफे से ही पैदा होती है तो आप मुनाफे को अनैतिक और राष्ट्र-विरोधी कैसे कह सकते हैं ?"

मार्क्सवादी जिज्ञासु के गम्भीर प्रश्न का उत्तर देने के लिये अपने दांयें हाथ से बायें हाथ की उँगली थाम कर, मानों प्रश्न का उत्तर कई भागों में देना चाहते हैं, गम्भीरता से बोले—"देखिये, पूंजी है वास्तव में बचा कर रखी गयी ऐसी पैदावार जिसे पैदावार, के यंत्रों का या पैदावार में सहायता देने का साधन बना लिया गया है। यह प्रत्यक्ष सत्य है कि यंत्रों के इस युग में पैदावार सामुहिक रूप से और सांझे में की जाती है। इसलिये समाज द्वारा की गयी पैदावार को यदि उत्पादक साधनों और उत्पादक पूंजी का रूप दिया जाता है तो वह समाज की ही वस्तु है, एक व्यक्ति की नहीं।"—उन्होंने दूसरी उँगली को छुआ—"पैदावार की शक्ति पर समाज का अधिकार होने से पैदावार समाज-हित के दृष्टि-कोण से होगी और सामाजिक पैदावार का बड़ा भाग समाज के उपयोग से छीन कर अलग नहीं कर दिया जायगा। इससे समाज की समृद्धि बढ़ेगी।"— उन्होंने तीसरी उंगली को छुआ—"जब पैदावार समाज के नियंत्रण में सामाजिक उपयोग के लिये होती है तब पैदावार की शक्ति को समाज के लिये उपयोगी पदार्थों में बाँट कर, आर्थिक व्यवस्था से पैदावार को निस्सीम रूप से बढ़ाया जा सकता है। उस समय गांधी-वाद का आदर्श "अधिकांश को तो गरीब ही रहना है", हमारा आदर्श नहीं होगा। समाज का प्रत्येक व्यक्ति बिड़ला, टाटा और सिंहानिया की भाँति आराम, अवकाश और सुविधा चाहता है। यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि जारशाही पूंजीवादी रूस में मजदूरों की दुर्दशा भारत के मज-दूरों जैसी ही थी परन्तु समाजवादी व्यवस्था कायम हो जाने से पैदा-

वार की शक्ति को व्यक्तिगत मुनाफे के लिये नहीं बल्कि सामाजिक नियंत्रण में सामाजिक हित के लिये बढ़ाने से आज रूस का मजदूर पहले की अपेक्षा पचास गुणा अधिक समृद्ध है। आज रूस का मजदूर संसार के सबसे धनी देश अमेरिका के मज़दूर से भी अधिक समृद्ध है।" अब दूसरे हाथ की पहली उँगली थाम कर वे बोले—"पूँजी के व्यक्तिगत अधिकार में होने से मुनाफे के रूप में समाज की पैदावार का बड़ा भाग समाज से छिन जाने पर पैदावार की शक्ति तो बढ़ेगी परन्तु समाज की खपत की शक्ति घट जायगी।" संसार के सभी उन्नत पूँजीवादी देश इस संकट में फँसे हुये हैं—"दूसरी उँगली छूकर वे बोले—"यह क्रम जारी रहने से और पैदावार का प्रयोजन व्यक्तिगत मुनाफ़ा ही होने से पैदावार को भी घटाना पड़ेगा, परिणाम में समाज में बेकारी होगी; जैसा कि सभी पूंजीवादी देशों में हुआ है! पूंजीपति श्रेणी सदा ही समाज में बेकारी को रखना चाहती है। क्योंकि मजदूरों को बेकारी द्वारा भूख का भय दिखा कर वह मज़दूरी का दर नीचा रख सकती है।" अगली उँगली छू कर वो बोले "जब पैदावार व्यक्तिगत मुनाफे के लिये की जायगी तो पूंजीपति अपने सौदे का दाम ऊँचा रखने के लिये समाज की आवश्यकता से कम पैदावार करेगा क्योंकि महंगाई रहने पर ही उसे अधिक मुनाफ़ा होता है।"—उन्होंने अगली उँगली छुई—"और जब पूंजीपति श्रेणी में आपसी होड़ के कारण और किसी सौदे में मुनाफ़े की गुंजाइश कम रह जायगी तो पूंजीपति असली माल में मिलावट करेगा, नकली माल बनायेगा। आज हमारे देश में मुनाफ़ा कमाने की होड़ बहुत अधिक है और समाज में खरीद सकने की सामर्थ्य बिलकुल कम हो जाने से बाज़ार घट गया है, इस कारण जिस चीज में देखिये, धोखाबाजी पायेंगे।"

मार्क्सवादी, शायद गले में कोई अवरोध आ जाने के कारण, जरा अटके थे कि सर्वोदयीजी फिर अत्यन्त करुण स्वर में बोल उठे—"आप अपनी हिंसावृत्ति के कारण सब पूंजीपतियों को चोर ही समझ लेना चाहते हैं, यह आपके मन की हिंसा है। आप यह भूल जाते हैं कि देश की इतनी बड़ी आर्थिक व्यवस्था को जीपति श्रेणी ने ही अपने

परिश्रम और सुख-त्याग से बचत कर बनाया है। यदि आप इन व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण करना ही चाहते हैं तो आपको चाहिये कि पूंजीपति श्रेणी को समुचित मुआविज़ा दें। आपकी सरकार जमींदारी उन्मूलन का कार्य-क्रम लेकर चली। परन्तु जमींदारों के मुआविज़े के लिये निश्चित एक सौ अस्सी करोड़ रुपये में से आप का किसान, दस गुणा लगान की अदायगी की अन्तिम तारीखें तीन बार बदलने पर भी, अभी तक केवल छब्बीस करोड़ ही दे सका है। * शेष एक सौ चवन करोड़ सरकार पर जमींदारों के कर्ज़े के रूप में रहेगा! यदि उद्योग-धन्धों का राष्ट्रीयकरण किया जायगा तो सरकार उसका मुआविज़ा कहाँ से देगी? देश की गरीब प्रजा क्या इतना मुआविज़ा भर सकेगी?"

सर्वोदयी जी की इस दुहाई के उत्तर में कामरेड ने कहकहा लगा दिया और बोले—"पूँजीपति श्रेणी और गाँधी जी जैसे पूँजीवाद के समर्थकों को गरीब प्रजा की अवस्था पर आँसू बहाते देख कर हमें ऐसा जान पड़ता है कि पिंजरे में बन्द चिड़ियाँ अपनी मुक्ति के लिये पिंजरा तोड़ने की कोशिश कर रही हैं, यह देखकर चिड़ीमार आँखों में आँसू भर कर उन्हें समझा रहा है कि तुम मूर्खता कर रही हो। यदि यह पिंजरा टूट जायगा तो तुम आकाश में उड़ने लगोगी और राह भटक जाओगी, बाज और बिल्लियाँ तुम्हें खा जायेंगी। ठीक ऐसे ही आपको और आपकी सरकार को प्रजा पर सरकारी कर्ज बढ़ने की चिन्ता है। जमींदारों को मुआविज़ा देना काँग्रेस के एलान में कभी शामिल न था और न उद्योग-धन्धों के राष्ट्रीयकरण के लिये जनता ने कभी मुआविज़े की बात सोची या मानी थी। क्या मुआविजा इसलिये दें कि अब तक हमें खूब लूटा गया है? १९३१ की कराची काँग्रेस में काँग्रेस ने जमींदारी उन्मूलन और देश के उद्योग-धन्धों के राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव पास किया था। उस समय मुआविज़े का कोई चर्चा भी न थी। अब सरकारी व्यवस्था पूँजीपति श्रेणी के हाथ में है। उनकी अपनी सरकार चाहे जैसे प्रजा की खाल खींच ले। राष्ट्र की सम्पूर्ण सम्पत्ति

---

* जुलाई १९५० के पहले सप्ताह तक। अदायगी की तीसरी बार निश्चित की गई अन्तिम तारीख ३० जून १९५० थी।

और पैदावार के साधन राष्ट्र की मेहनत करने वाले श्रेणी की मेहनत का फल है। उस पर कुछ गिने-चुने पूँजीपतियों का अधिकार अन्याय और अनैतिक है। समस्या है, मेहनत करने वालों की—मेहनत का फल चुरा लेने वालों से चोरी का माल बरामद करने की। इसका साधन है. समाज की सामुहिक शक्ति ! चोरों को मुआविज़ा देने की सलाह केवल चोरों के दलाल, गठकतरे ही दे सकते हैं।"

विरोध में सिर हिला कर सर्वोदयी जी फिर बोले—"समाज की इच्छा की दुहाई देकर आप व्यक्ति पर अन्याय नहीं कर सकते ! यदि आप व्यक्ति की स्वतन्त्रता छीन लेंगे तो इससे समाज का भी नाश हो जायगा। जिस समाज में व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं, वह समाज पराधीन ही समझा जायगा। व्यक्ति ही समाज को बनाते हैं।"

कामरेड सर्वोदयी जी की बातों से झल्ला कर बोले—"जान पड़ता है, ईश्वर की प्रेरणा से आपका तर्क सदा ग़लत बात प्रमाणित करने के लिये ही चलता है। आप ने यह तो कह दिया कि व्यक्ति ही समाज को बनाता है परन्तु क्या आप समाज के बिना व्यक्ति की कल्पना कर सकते हैं ? आप जैसे सैकड़ों व्यक्ति न हों तो भी समाज तो रहेगा ही। यदि पूंजीपति की मुनाफ़ा कमाने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता समाज का हनन करने से ही रह सकती है तो कोई नैतिकता उसे स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हो सकती। कितना बड़ा अन्धेर है, यदि एक आदमी किसी को धमका कर उसकी जेब से चार पैसे छीन ले तो आप उसे जेल भेज देते हैं परन्तु पूँजीपति एक हज़ार मज़दूरों को भूख से तड़पाने का भय दिखा कर महीनों-वर्षों उनकी मेहनत का फल पैसा बटोरता रहे तो अपराध नहीं ! किसी का गला घोंट कर यदि कोई आदमी एक रुपया छीन ले तो फांसी पाता है परन्तु आटे में इमली का बीज और पत्थर मिला कर हजारों की जान ले कर मुनाफा कमाने वालों को, तेल में भड़भड़ा मिला कर लोगों को महामारी के पेट में ढकेलने वाले मुनाफ़ाखोरों के लिये आपके पास कोई दण्ड नहीं.......ऐसे कितने आदमियों को फांसी चढ़ाया है आपने ?"

"यह तो व्यक्तिगत अपराध है".......सर्वोदयी जी कहना चाहते थे परन्तु वैज्ञानिक टोक बैठे—

"व्यक्तिगत अपराध है, परन्तु इस अपराध का आधार है मुनाफ़ा कमाने का उद्देश्य और मुनाफ़ा कमाने की व्यक्तिगत स्वतंत्रता; समाज के विरोध में व्यक्ति का स्वार्थ ! इसी सिद्धान्त पर चलकर सरकारी नौकर घूस खाता है। चोरबाज़ारी और सौदे में धांधली करने वाले मुनाफ़े के लिये अनुचित अवसर चाहने वाले ही हज़ारों रुपये की रिश्वतें देते हैं। सरकारी अफ़सर इस रिश्वत को पूंजीपति के मुनाफ़े में अपना नगण्यमात्र सा भाग समझता है। जब समाज की शासक शक्ति मुनाफ़े के अधिकार की स्वतंत्रता भोग रही है और उनके बड़े-बड़े कारिन्दे उनके अधिकार की रक्षा करने के इनाम में हज़ारों रुपये जेब में डाल रहे हैं तो मामूली सरकारी नौकर क्या करें ? वह अठन्नी-चवन्नी ही रिश्वत ले लेते हैं और इसे अपना मुनाफ़ा समझते हैं। राज जो मुनाफ़ा कमाने के सिद्धान्त का ठहरा। तनखाह तो हुई केवल मजदूरी, रिश्वत हो गई मुनाफ़ा।"

सर्वोदयी जी फिर बोले—"आप व्यक्तियों के लोभ को समाज का अपराध बना देना चाहते हैं। यह नहीं सोचते कि व्यक्ति की आत्मिक उन्नति के बिना समाज सुधर नहीं सकता। पहली बात है, व्यक्तिगत आत्मिक उन्नति !"

सर्वोदयी जी के वही बात बार-बार दोहराने से वैज्ञानिक ने माथे पर हाथ मार कर उत्तर दिया—"सुनिये, हम तो पहले अपने शरीर की रक्षा चाहते हैं। आप शरीर-रक्षा के अवसर के बिना ही आत्मिक उन्नति कर लेना चाहते हैं। बेहतर हो आप ऐसी जगह जाइये, जहाँ शरीर-हीन आत्मायें बसती हों, यानी मरघट में……………"

बात समाप्त करते ही वैज्ञानिक उठ खड़े हुये और उनकी देखा-देखी थके हुये दूसरे लोग भी।

पूंजीवाद की भोग्य महिला और समाजवाद की आत्म-निर्भर नारी !

क्लब में बात ढीले-ढाले ढंग से चल रही थी, कभी एक विषय पर और कभी दूसरे पर। शुद्ध साहित्यिक जी अंग्रेजी के एक 'चित्रमय' साप्ताहिक के पन्ने पलट रहे थे। घड़ियों का विज्ञापन देखते तो ब्योरा पढ़ने लगते।

भद्र पुरुष ने चुटकी ली—"अरे भाई शुद्ध साहित्यिक जी, कोई घड़ी पसन्द नहीं आई ?"

"घड़ियाँ तो बीसियों पसन्द हैं"—शुद्ध साहित्यिक ने उत्तर दिया। "परन्तु उनके दाम ही पसन्द नहीं"—पत्र में एक घड़ी का चित्र दिखाते हुए वे बोले—"यह देखिये न ! और दाम ४७५) ! साल भर के लिये दो वक्त का खाना-पीना एक भले आदमी का !"

"तो कोई मामूली सी ले लो न, तीस-चालीस की"—भद्र पुरुष ने सुमति दी।

"घड़ी मामूली लेने से फायदा ?"—मौजी ने इस सुमति का विरोध किया—"समय ही देखना हो तो डाकखाने और म्युनिसिपैल्टी के घण्टाघरों से देखा जा सकता है। शहर भर में घड़ियाल गरजा ही करते हैं।......मन का संतोष भी तो कोई चीज है ! अपना भी तो दिल है !......जेब खाली है तो क्या ?"

"तो दिल को ही जेब में डाल लो मित्र !"—इतिहासज्ञ चुटकी ले

मुस्करा दिये और फिर बोले—"४७५) मोल केवल समय जान सकने का नहीं है। घड़ी मर्दों का गहना भी तो है। बढ़िया फाउस्टेन पेन, बढ़िया घड़ी, एकाध अंगूठी, यह मर्दों के गहने हैं। गहनों की कीमत को क्या कहना? यह तो शौक और प्रतिष्ठा की कीमत है। हमारे बुजुर्ग, आज कल के राजा-महाराजाओं की तरह कण्ठ, कड़े और मोतियों की बालियाँ पहना करते थे। अब केवल घड़ी, कलम और अंगूठी से ही अरमान पूरे कर लिये जाते हैं।"

एक ओर दीवार के सहारे बैठी श्रीमती जी बोल उठीं—"ठीक तो कह रहे हैं इतिहासज्ञ जी, मर्दों को भी तो गहनों का चाव होता है, लेकिन गहनों के लिये बदनाम होती हैं केवल स्त्रियाँ बेचारी।"

"गहना समृद्धि का चिन्ह है और समाज में समृद्धि का सम्मान है। चाव गहनों का मर्दों को भी जरूर होता है"— वैज्ञानिक बोले— "लेकिन मर्द गहनों के लिये औरतों की तरह नाक-कान तो नहीं फाड़ लेते! कारण शायद यह है कि हमारे समाज में औरत की स्थिति पुरुष को रिझा सकने की शक्ति पर ही निर्भर करती है। वह बेचारी पुरुष को रिझाने के लिये अपना अस्तित्व तक निछावर कर देना चाहती है। क्योंकि जिस नारी पर पुरुष न रीझे तो उस बेचारी का अस्तित्व ही क्या?"

"वाह, स्त्रियाँ कहाँ पुरुषों को रिझाती है?" श्रीमती जी ने प्रकट नाराज़ी से विरोध किया—"पुरुष ही तो स्त्रियों के पीछे भागते हैं। वे बेचारी तो घरों में बन्द रहती हैं।"

बहुत जबरदस्त बात पकड़ पाने के उत्साह में दोनों हाथ उठाकर वैज्ञानिक ने कहा—"बिलकुल ठीक कहा आपने, आपकी दोनों बातें सत्य हैं। हमारे समाज में पुरुष स्त्रियों के पीछे भागते हैं क्योंकि उन्हें स्त्री के पीछे भाग सकने का साहस और अवसर है। स्त्रियाँ, क्योंकि घरों में बन्द रखी जाती हैं, इसलिये वे जो कुछ चाहती हैं, पुरुष को रिझा कर उसकी प्रसन्नता से ही पा सकती हैं। रिझा सकने योग्य बनने के लिये वे अपने नाक-कान कटाती""""क्षमा कीजिये, नाक-कान छिदाती हैं, हाथ-पाँव और मुँह पर रंग पोतती हैं। सुनिये।" वे और

ज़ोर से बोले—"शादी के लिये लड़के लड़की के चुनाव के समय लड़की का रूप देखा जाता है और लड़के की नौकरी और जायदाद देखी जाती है, क्या मतलब है इसका ?"

श्रीमती जी ने फिर विरोध किया—"वाह, बहुत मालूम है आपको ! आजकल तो सब पूछते हैं कि लड़की कितना पढ़ी है ?"

वैज्ञानिक फिर बोले—"स्त्रियों की पढ़ाई उनकी रिझावट जानने के लिये ही पूछी जाती है, भाभी जी ! आप जानती हैं, बोलने वाली गुड़िया की कीमत अधिक होती है।"

"स्त्रियों को आप गुड़िया-खिलौना समझते हैं ?"—महिला ने अधिक नाराज़ होकर फटकार सी बतायी।

सर्वोदयी जी महिला की सहायता के लिए गर्दन ऊँची कर बोले—"यह पश्चिमी संस्कृति का कुप्रभाव है कि आप नारी को केवल मन-बहलाव की वस्तु समझते हैं।"

"पश्चिमी संस्कृति का कुप्रभाव ?"—इतिहासज्ञ ने आँखें फैलाकर विस्मय प्रकट किया और बोले—"पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव तो यह है कि दो महिलायें आप के साथ बैठकर बात कर रही हैं। पूर्वी संस्कृति के अनुसार तो महिलाओं का काम घर के भीतर बैठ कर तरकारी के लिये मसाला पीसना होना चाहिए था या बहुत होता तो वे चिक की आड़ में बैठ कर हमारी-आपकी बातें सुन लेतीं।"

राष्ट्रीय जी बोल उठे—"स्त्रियों को घर के भीतर बन्द रखने की संस्कृति मुस्लिम सभ्यता का कुप्रभाव है। हमारी संस्कृति में तो स्त्रियों का स्थान बहुत ऊँचा था।"

"हाँ"—महिला ने अभिमान से समर्थन किया—"स्त्री घर की स्वामिनी होती थी। स्त्रियाँ वेदों की ऋचाओं की व्याख्या करती थीं। लीलावती ने गणित लिखी थी। यह तो विदेशी संस्कृति का फल था कि स्त्रियों को पराधीन बना दिया गया ?"

इतिहासज्ञ ऊँचे स्वर में प्रश्न कर बैठे—"क्यों बहिन जी, मनु-स्मृति क्या औरंगज़ेब ने लिखी थी ? या हिन्दू स्संकृति के कन्यादान के पुण्य का विधान मुग़लों ने किया था ? दान या मोल-तोल कभी

स्वतंत्र व्यक्तियों का नहीं किया जा सकता। दान किया जा सकता है केवल पशुओं और गुलामों का। आपकी संस्कृति में कन्यादान महान पुण्य और पवित्र कार्य समझा जाता था। आप ही बताइये, जिस व्यक्ति को आप दान में दे सकते हैं, आपके घर में उसका क्या अधिकार ? या जो व्यक्ति दान के रूप में आपके परिवार में आयेगा, उसकी स्थिति आपके घर में दूसरे लोगों के समान हो सकेगी ?"

सर्वोदयी जी ने गम्भीरता प्रकट करने के लिये एक गहरा निश्वास ले उपदेश सा दिया—"स्पर्धा और अधिकार के लोभ की प्रवृत्ति हमारे मनों पर इतना गहरा प्रभाव कर गयी है कि पति-पत्नी के पवित्र आत्मिक सम्बन्ध में भी आप दासता, स्वामित्व और अधिकारों के बंटवारे का प्रश्न उठाने लगे हैं। इसका परिणाम क्या हो रहा है ?"--द्रवित स्वर में उन्होंने प्रश्न किया और फिर कोमल स्वर में स्वयं उत्तर देने लगे— "इसका परिणाम हो रहा है आचार का उच्छृंखलता और वैमनस्य ! हमारे समाज का आदर्श तो था, पति-पत्नी में अटूट आत्मिक सम्बन्ध ! जन्म-जन्म का आत्मिक सम्बन्ध। पति के बिना पत्नी जीवित नहीं रह सकती थी। उस सम्बन्ध की मधुरता······"

"यह आप अपने स्वप्न और स्वार्थ की कल्पना की बात कर रहे हैं"—कामरेड ने टोक दिया।

इतनी अच्छी बात कहते-कहते सर्वोदयी जी को टोक देना श्रीमती जी और महिला को अच्छा न लगा। उन्होंने असंतोष से कामरेड की ओर देखा परन्तु कामरेड कहते ही गये—

"यही तो हमारे पूर्वजों का चातुर्य था। स्त्री को आर्थिक रूप से अपने वश में रखने के बाद उन्होंने उस पर विश्वास का भी बन्धन लगा दिया। अर्थात् यदि स्त्री पुरुष के अत्याचार से व्याकुल होकर, प्राणों की बाजी लगा कर भी भागना चाहे तो भाग न सके। स्त्री को यह भय रहे कि भाग कर क्या करूँगी ?····मर कर भी तो इसी के पल्ले पड़ना होगा ? आप पति-पत्नी के आत्मिक सम्बन्ध की, जन्म-जन्मान्तर के प्रेम की बात करते हैं परन्तु यथार्थ स्थिति क्या है ? हमारी चाची पन्द्रह बरस से हर मास नियमित रूप से तीन-चार बार पिटती

आयी हैं। चाचा रात में दुकान से लौटते हैं तो वे प्रायः मुँह फुलाये पीठ दिखा कर उनका स्वागत करती हैं। चाचा अपना क्रोध थप्पड़, मुक्के और लात से प्रकट करते हैं। चाची उन्हें मुंड़चिरा और दाढ़ी-जार कह कर वरदान देती हैं—तेरे हाथों में कोढ़ फूटे। अपने माँ बाप को कोसती हैं, जिन्होंने ऐसे 'मसान' के गले बाँध कर जिन्दगी भर का रोना कर दिया। नित्य भगवान को गुहारती हैं कि काली माई! मुझे उठा ले तो इस चण्डाल से पीछा छूटे। इस पर भी चाची करवाचौथ का व्रत प्रतिवर्ष करती हैं कि फिर यही पति अगले जन्म में मिले? आप ही बताइये, यह क्या चाची की आत्मा की पुकार है? हम ऐसे एक नहीं बीसियों परिवारों को जानते हैं। आप भी जानते होंगे। यह है यथार्थ! आप अपने समाज में नारी के महत्व की डींग हांकते हैं। नारी जितनी असहाय द्विज हिन्दू समाज में है, वैसी और किसी समाज में नहीं।"

इतिहासज्ञ बोल उठे—"सीधी बात है, सर्वसाधारण लोग घर में लड़का होने से खुश होते हैं, या लड़की? स्वयम् मातायें क्या चाहती हैं?····अपने पेट से लड़के का जन्म चाहती हैं या लड़की का? माँ की यह इच्छा कि उसके गर्भ से मां (लड़की) नहीं, बाप (लड़का) ही पैदा हो, माँ की दयनीय और पराधीन परिस्थिति का निर्विवाद प्रमाण है।"

भद्र पुरुष ने बीच बचाव किया—"यह तो इसलिये कि परिवार का पालन पुरुष करता है।"

इन्हें टोक कर मार्क्सवादी बोल उठे—"जो परिवार का पालन करता है, वही परिवार का स्वामी होता है, परिवार पर उसी का शासन होता है। शासन और शासित में क्या समानता? समाज परिवारों का समूह है। इसलिये समाज पर पुरुष का शासन है। यदि स्त्री आर्थिक रूप से पुरुष के आधीन और आश्रित रहेगी तो समाज में उसकी स्थिति पुरुष के समान कभी नहीं हो सकेगी। समाज में पुरुष के समान अधिकार और स्थिति पाने के लिये स्त्री का आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर होना आवश्यक है?"

अपने हाथ के चित्रमय साप्ताहिक के पन्नों के बीच उँगली रख

उसे बन्द करते हुये शुद्ध साहित्यिक बोले—"आप चाहते हैं परिवार में जो कुछ मधुरता है, नारी को स्नेह और ममता का आकर्षण बना कर, उसे पत्नी और माता बना कर उसके चारों ओर परिवार का जो जगत घूमता है, वह छिन्न-भिन्न हो जाय ? नारी को घर की सुरक्षा और प्रतिष्ठा से धक्का देकर बाजार में दुकानदारी, मिल में मजदूरी और दफ़्तर में किरानींगिरी के लिये भेज दिया जाय ? क्या होगा ऐसे स्वार्थी समाज का चित्र ?.......वह समूचा समाज रेल के स्टेशन पर जगह के लिये झगड़ती भीड़ का सा हो जायेगा, जिसमें कोमल शिशु माँ की ममता की रक्षा से वंचित होकर गलियों में मारे-मारे फिरेंगे और पुरुष ममताहीन हिंस्र पशु की भाँति स्वार्थी हो जायेंगे ?"

शुद्ध साहित्यिक के स्वर में करुणा की कम्प और आँखों में क्रोध की चमक आगयी। उनकी व्याख्या से समाज के नाश की आशंका का आभास पाकर श्रीमती जी और महिला के कोमल भावों पर आतंक छा गया। शेष लोग भी उस आतंक को अनुभव कर रहे थे।

यह स्थिति देख सर्वोदयी जी ने उँगली उठा कर मार्क्सवादी को चेतावनी दी—"हमारे समाज की इस परम्परागत प्रतिष्ठा पर आघात करने में आपका आर्थिक स्वार्थ ही प्रधान कारण है। आप स्त्री के श्रम से लाभ उठाना चाहते हैं, आप उसकी कमाई खाना चाहते हैं। परन्तु याद रखिये, मातृत्व का कर्तव्य पूरा कर नारी जिस पद और सेवा की अधिकारी बन जाती है, उस पद और अधिकार से उसे गिराने की चेष्टा के अन्याय से समाज खण्ड-खण्ड हो जायेगा ? पुरुष उस पाप का प्रायश्चित्त कभी नहीं कर पायेगा। मातृत्व के पद से बड़ा पद और क्या है ? मातृत्व के अधिकार से बड़ा अधिकार दूसरा कौन है ? मातृत्व के सम्मान से बड़ा सम्मान कहां है ? नारी का जितना आदर हमारे समाज ने किया है, उतना संसार में कोई नहीं कर सकता। भगवान को जगत-पिता कहा गया है। हमारे समाज ने नारी को माता कह कर उसका आसन भगवान के समीप रक्खा है।"—सर्वोदयी जी ने समर्थन की आशा से महिला और श्रीमती जी की ओर देखा, वे दोनों वास्तव में ही सन्तुष्ट जान पड़ीं।

परन्तु वैज्ञानिक इस गम्भीर और भाव पूर्ण वक्तृता से कुछ भी प्रभावित न हो कर पूछ बैठे—"यदि सच कहने के लिये क्रोध से अभयदान मिल सके तो एक बात कहूँ ?"

"कहो, कहो"—मौजी ने बढ़ावा दिया।

"सुनिये"—वैज्ञानिक बोले—"मां बनने का हमारे समाज में कोई सम्मान नहीं है। नारी को स्वतंत्रता और अपनी इच्छा से मां बन जाना ही सबसे बड़ा अपराध है। नारी का आदर अपने पति की पत्नी बनने और अपने पति के लिये सन्तान ब्या देने में ही है।"

इस बात से महिला को क्रोध आ गया और उन्होंने अपना मुँह दीवार की ओर कर लिया। श्रीमती जी ने लज्जा प्रकट करने के लिये आँखें झपक कर झुकालीं। सर्वोदयी जी ने वैज्ञानिक की ओर घूर कर फटकार बतायी—"आप में सभा में बैठने योग्य शालीनता नहीं है। इस धृष्टता के लिये आप को क्षमा माँगनी चाहिये ?"

बात आगे न बढ़ने देने के लिये वैज्ञानिक बोले—"हमने तो पेशगी आप से क्षमा माँग ली है। जितनी और क्षमा हो, वह भी दे डालिये ?"

"आपका मतलब है"—गम्भीर होकर मौजी ने प्रश्न किया—"कि समाज में विवाह के बिना ही सन्तान पैदा हो जाय !"

क्षमा मांगने के लिये विवश होने की झेंप की परवाह न कर वैज्ञानिक ने उत्तर दिया—"आत्मिक सम्बन्ध से तो सन्तान पैदा हो ही नहीं सकती। स्त्री पुरुषों की साझी सन्तान पैदा होना ही उनका विवाह है। विवाह के बिना सन्तान हो कैसे सकती है ?"

लज्जा को वश कर श्रीमती जी ने तीखे स्वर में प्रश्न कर दिया—"आपका मतलब है, पुरुष पर सन्तान के पालन की जिम्मेदारी न हो ....वाह साहब ?"

मार्क्सवादी बोल उठे—"अपनी सन्तान के पालन की जिम्मेवारी तो नैतिक और प्राकृतिक जिम्मेदारी है........"

इन्हें टोक कर वैज्ञानिक ऊंचे स्वर में बोले—"हाँ है, परन्तु विवाह की जिम्मेवारी को जबरदस्ती लादने का बंधन आर्थिक बंधन हुआ, आत्मिक सम्बन्ध और जन्म-जन्मान्तर का प्रेम तो नहीं।"

शुद्ध साहित्यिक जी ने चुटकी ली—"तो प्रेम क्या है ? उच्छृंखलता—अनाचार ?"

"उच्छृंखलता तो तब होती है, जब प्रेम के लिये प्रेम होता है और कला के लिये कला होती है।"—वैज्ञानिक ने उत्तर दिया—"हम तो प्रेम को जीवन के विकास और रक्षा का साधन मात्र मानते हैं। वह केवल व्यक्तिगत वस्तु नहीं, समाजिक कर्तव्य से बँधा दो व्यक्तियों का सम्बन्ध है। वास्तविक बात यह है कि आप स्त्रियों को समझा देना चाहते हैं कि विवाह से उन्हें मातृत्व का महान पद मिल जाता है, एक पुरुष पर उनका अधिकार हो जाता है। असलियत तो यह है कि नारी आर्थिक बंधन में बँध कर पुरुष के वश हो जाती है......"

इन्हें रोक कर इतिहासज्ञ बोले—"मां के आदर का इतना शब्द-जाल और आडम्बर बाँधने से क्या लाभ ? अपने वंश के लिये सन्तान उत्पन्न करने के प्रयोजन से जिस नारी को आप दान में अथवा मोल में लाये हैं, वह मां बन जाने पर भी आपकी ही चीज रहेगी, आप उसकी चीज नहीं बन जायँगे ! आप धरती को भी माता कहते हैं और उसके मालिक बन कर उसकी खरीद-फरोख्त करते रहते हैं, गाय को भी माता कह कर उसके गले में रस्सी बाँधे रहते हैं। वह दूध देती है तो उसे पुचकारते भी हैं और गैया माता के सींग दिखाने पर लाठी से उसकी खबर भी लेते हैं।"

महिला ने विस्मय से टोक दिया—"आप क्या माता के पद का भी आदर नहीं करते ?"

इतिहासज्ञ ने विनय से हाथ जोड़ दिये—"मैं आपका आदर अवश्य करता हूँ परन्तु मैं यह कैसे कह दूं कि माता कह कर मैं जिसका आदर करता हूँ, वह मेरे पिता की प्रेयसी नहीं है और मेरे भावी पुत्र की आदरणीय माता को मेरी प्रेयसी नहीं बनना पड़ेगा ?"

श्रीमती जी को हँसी आगयी, इसलिये उन्हों ने साड़ी का आंचल होठों पर रख खांसने के बहाने मुख दूसरी ओर कर लिया। दूसरे लोगों के ओठों पर भी मुस्कराहट आगयी। महिला इधर-उधर लोगों के चेहरे देख कर बात समझ पाने का यत्न कर रही थीं कि सर्वोदयी जी ने क्रोध

का पुट मिले गम्भीर स्वर में चेतावनी दी—"आपको सभ्यता से बात करनी चाहिये !"

इतिहासज्ञ ने उतने ही गम्भीर होकर उत्तर में प्रश्न किया—"असभ्यता क्या है ?...क्या यह असभ्यता है कि आपकी माता आपके पिता की पत्नी है ? क्या माता का गौरवमय पद पाने के लिये पहले किसी की प्रेयसी होना आवश्यक नहीं ? यदि माता का पद गौरवमय है तो प्रेयसी का पद गौरवमय क्यों नहीं ?...माता के गौरवमय पद का परमिट प्रेयसी बनने से ही मिलता है। और यह पद तो केवल प्रेयसी हो सकने की परीक्षा में पास होने का प्रमाण पत्र ही है।

"और याद रखिये"—चेतावनी के लिये, सर्वोदयी जी की भांति उँगली उठाकर वे बोले—"आपकी संस्कृति में नारी का गौरव उसके अपने व्यक्तित्व में नहीं है। उसका गौरव किसी की श्रीमती बन जाने में ही है। वह किसी की बेटी, किसी की बहू, किसी की मां है। वह स्वयम कुछ नहीं। आपके समाज में नारी को उसके व्यक्तिगत नाम से पुकारना उसका अपमान है। उसे फलाने की श्रीमती, फलाने की माँ या फलाने की बहन कहना ही उसका सम्मान है। अर्थात् नारी अपने व्यक्तित्व को प्रकट करे तो यह उसकी निर्लज्जता है। वह पुरुष की छाया में छिपी रहे तो उसका सम्मान है। कैसी गुलामी सिखायी है आपने स्त्री को ?"

कामरेड बोले—"वह तो केवल समाजवादी संस्कृति है, जिसमें नारी का अपना अस्तित्व है। वह अमुक की ही कुछ न होकर स्वयम् भी कुछ होती है। जहाँ पुरुष के लिये प्राप्य सभी अवसर नारी के लिये भी सुलभ हैं। जैसे आप बाप बनने के साथ ही प्रोफ़ेसर, इंजीनियर और डाक्टर बन सकते हैं वैसे ही रूस में नारी माँ बनने के साथ ही समाज के एक व्यक्ति के नाते समाज का महत्वपूर्ण अंग भी बन सकती है। वहाँ स्त्रियों को आपके देश की तरह केवल चौके और बिस्तरे के लिए उपयोगी बनाकर सुरक्षित नहीं रखा जाता।"

श्रीमती जी और महिला मानों मानसिक आघात से दीर्घ साँसें ले रही थीं। जिज्ञासु, भद्रपुरुष और मौजी भी जैसे सोचने के लिये विवश हो गये थे। इस स्थिति का उपाय करने के लिये सर्वोदयी

जी ने तुरंत प्रश्न किया—"तो आप चाहते हैं, हमारे समाज में भी स्त्रियों को रूस की तरह सामाजिक सम्पत्ति बना दिया जाये ?"

खिन्न स्वर में मार्क्सवादी ने उत्तर में प्रश्न किया—"आपने यह प्रश्न अज्ञान के कारण किया है अथवा यह धूर्तता है ! आप स्त्री को व्यक्तिगत सम्पत्ति मानते हैं, इसीलिये उसके सामाजिक सम्पत्ति बन जाने की आशा भी आपके मन में होती है। समाजवादी विचारधारा के अनुसार स्त्री को सम्पत्ति नहीं समझा जा सकता। उसका दान नहीं किया जा सकता। उसे खरीदा और बेचा नहीं जा सकता। वह किसी भी प्रकार की सम्पत्ति नहीं, स्वतंत्र आत्म-निर्भर व्यक्ति है। जिन लोगों में स्त्री को व्यक्तिगत सम्पत्ति समझने का संस्कार चला आता है, उन्हीं के मन में स्त्री के सामाजिक सम्पत्ति बन जाने की कल्पना उठ सकती है। जो लोग स्त्री को पुरुष के समान ही समाज का अंग समझते हैं, उनके मन में स्त्री के सामाजिक सम्पत्ति बन जाने की कल्पना नहीं हो सकती। और फिर रूस के समाजवादी समाज में तो स्त्री आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर है। वहाँ नारी समाज पर अपना उतना ही अधिकार रखती है, जितना कि पुरुष।"

सर्वोदयी जी ने फिर प्रश्न कर दिया—"क्या हमारे देश की नारी श्रम में पुरुष का हाथ नहीं बटाती ! आप देखिये देहात में जाकर, वही तो असली देश है !"

"बटाती क्यों नहीं ?"—मार्क्सवादी ने उत्तर दिया—"परन्तु श्रम में हाथ बटानेवाली नारियों की स्थिति आपके समाज में सम्मान-जनक नहीं समझी जाती ! सिर पर पानी का घड़ा, उपलों की टोकरी या ईंधन का गट्ठा ढोने वाली नारी के लिये आप राह छोड़कर क्या अलग नहीं हो जाते। उसके सामने संयत भाषा का प्रयोग आप आवश्यक नहीं समझते। यह सब आदर होता है उन नारियों का, जो पैदल चल सकने योग्य नहीं समझी जातीं ! हमारे सम्मानित समाज में नारी के लिये आदर की परम्परागत धारणा यह है कि वह पदार्थों की पैदावार में सहायक होने के लिये नहीं है। वह केवल भोग का साधन है। "लड़की को पढ़ाकर क्या नौकरी करानी है ?" यह है आपके समाज की भावना !

बड़े आदमी लड़की को इस लिये पढ़ाते हैं कि वह मँजे हुए और सुथरे ढंग से बातचीत और व्यवहार कर सके, पति-रूप में किसी बड़े आदमी को पा सके ! इसलिये सम्मानित समाज की नारी पुरुषार्थी और बल-वान होना तिरस्कार का कारण और कोमल तथा निर्बल होना आदर का कारण समझती है। इस 'गाड़ी-साड़ी' समाज की नारी खाना पकाने के लिये रसोइया, बर्तन और मकान साफ़ करने के लिये कहार, कपड़े धोने के लिये धोबी, सवारी के लिये गाड़ी और अपना बच्चा खिलाने के लिये आया माँगती है। वह अपने बढ़ाये हुये और रंगे हुये नाखून दिखा कर विश्वास दिलाना चाहती है कि उसके हाथों को कोई काम नहीं करना पड़ता ! वे रामलीला की सजी हुई झाँकी या मोम के ताजिये की तरह समाज के लिये केवल देखने की और "साहब" के लिये खेलने की वस्तु हैं ? और साहब अपने भोग का गौरव दिखाने के लिये उसका प्रदर्शन करता है। उनका यह बनाव सिंगार भी श्रीमती का अपना गौरव नहीं, वरन उनके साहब का ही गौरव है, जिनके नाम का टिकट मेम साहब पर लगा है·······"

शुद्ध साहित्यिक जी ने इन्हें टोक दिया—"आप क्या बकते जा रहे हैं ? समाज की सम्पूर्ण संस्कृति और परिष्कार कोगाली दिये जा रहे हैं !"

मार्क्सवादी बिगड़ उठे—"आपके विचार में समाज के लिये आव-श्यक पदार्थों की पैदावार और कार्यों भाग न लेना और अपने भाग से कहीं अधिक खर्च कर डालना ही परिष्कार और संस्कृति है ?······· इस संस्कृति और परिष्कार से छुट्टी ही ले लेना चाहते हैं।"

भद्र पुरुष गम्भीरता से बोले—"परन्तु ऐसा समाज तो गिना-चुना है। मध्यम श्रेणी और निम्न मध्यम श्रेणी की स्त्रियाँ तो घरों का सब नहीं तो बहुत सा काम-धन्धा करती ही हैं, परिवार का सब बोझ उन्हीं के कन्धों पर होता है।"

सहारा पाकर श्रीमती जी बोलीं—"जी हाँ, और क्या ?····दिन भर काम से छुटी नहीं मिलती ! साधारण गृहस्थ के चौके चूल्हे का काम ही कितना होता है ? सुबह का चौका दोपहर तक खत्म होता है और दोपहर से रात के चौके का काम शुरू।"

"आप ठीक कहती हैं"— मार्क्सवादी ने सहानुभूति से स्वीकार किया—"मध्यम और निम्न-श्रेणी की स्त्रियों का पूरा जीवन चौके और उधेड़ बुन में ही जाता है परन्तु यह एक ओर समाज के साथ और दूसरी ओर स्वयम् घरेलू निम्न-मध्यम-श्रेणी की स्त्रियों के साथ कितना बड़ा अन्याय है कि समाज का आधा भाग केवल खाना पकाने की ही सेवा में लगा रहे! समाज की श्रम-शक्ति का यह कितना बड़ा अपव्यय है? एक स्त्री जो समाज के लिये डाक्टर का, मैनेजर का, अध्यापक का, क्लर्क का, स्टेशन मास्टर और डाक बाबू का, फोटोग्राफ़र का, दर्जी का, कम्पोजीटर का काम कर सकती है, आयु भर केवल खाना बनाने का काम करती रहे। और दिन भर श्रम के बावजूद अपने पेट की रोटी के लिये एक मर्द की मोहताज बनी रहे?"

हँस कर शुद्ध साहित्यिक जी ने प्रश्न किया—"आप चाहते हैं सब लोग होटलों में खाना खाया करें?"

"होटल का खाना भला किस काम का?"—नाक सिकोड़ कर श्रीमती जी ने इनका समर्थन किया।

"आपका मतलब है, वैज्ञानिक बोले -"कुछ लोगों के चटोरपने के लिये समाज का आधा अंग रसोइया बना रहे? खाना क्या स्त्रियों के हाथ से ही स्वाद बनता है? उनकी हथेली से मसाला और घी तो पसीजता नहीं! होटलों में जैसे खाने वाले होंगे वैसा ही खाना बनेगा! बड़े-बड़े होटलों में खराब खाना खाने के लिये ही लोग १५-२० रोज़ नहीं देते होंगे। छोटे-मोटे होटलों में केवल गिने-चुने, बे ठौर-ठिकाने के लोग कभी-कभी जायंगे तो होटल से मुनाफ़ा कमाने वाला उनकी जेब काटेगा ही। लेकिन यदि जाने-पहचाने लोग नित्य आने लगेंगे तो बात दूसरी होगी। खाना जितने समय में दो आदमियों का बनता है उतने ही समय में पांच का और लगभग उतने ही ईंधन में? कमी और महंगी के इस ज़माने में प्रत्येक घर से फेंकी जाने वाली जूठन का भी अनुमान कीजिये? काम चाहे जितनी बचत से और छोटे परिमाण में किया जाय, कुछ न कुछ छीजन तो जाती ही है। यदि खाना सामुहिक रूप से बनने लगे तो समाज के कितने व्यक्ति दूसरे उपयोगी

कामों के लिये मिल सकेंगे ? समाज का कितना अपव्यय बचेगा ? और सबसे बड़ी बात, नारी आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर न रहने के कारण समाज में स्वतंत्र और आत्म-निर्भर व्यक्ति बन सकेगी।"

"आप समझते हैं, हर बात में रूस की नक़ल कर लेना ही मुक्ति का मार्ग है !"—वितृष्णा से मुस्करा कर सर्वोदयी जी ने इन्हें उत्तर दिया—"हमारे देश में फिलहाल मर्दों को ही रोजगार नहीं मिल रहा, आप स्त्रियों को भी रोजगार ढूँढ़ने के लिये कहिये। और वे रोज़गारी बढ़े, आर्थिक संघर्ष और बढ़े ?"

मार्क्सवादी ने उत्तर दिया—"जिस ढंग से रूस को अपनी उन्नति करने में सफलता मिली है, उस ढंग को हम केवल इसीलिये ही न अपनायें कि वह रूस का ढंग है ?...यह भी अच्छी दलील है श्रीमन !" —और वे ऊँच स्वर में बोले—"घरों में बन्द केवल रसोई बनाने में जिन्दगी काट देने वाली स्त्रियाँ बेकार नहीं तो क्या हैं ? आप को समाज में बेकारी का भय तो दीखता है परन्तु यह नहीं दीखता कि आज समाज के अधिकांश लोगों की नितान्त आवश्यकतायें भी पूरी नहीं हो पातीं ? समाज में बेकारी भी होने और समाज की आवश्यकतायें भी पूरी न हो सकने में आपको कोई सम्बंध नजर नहीं आता ?"

"इनके विचार में"—कामरेड ने टोक दिया—"लोगों का बेकार रहना और उनकी आवश्यकतायें पूरी न हो सकना, पूर्व जन्म के कर्मों का फल और भगवान की इच्छा है।"—कामरेड हँस दिये परन्तु दूसरे लोग प्रश्न की जटिलता के बोझ के कारण हँस नहीं पाये।

"भगवान की इच्छा नहीं है तो आप इसका उपाय कर लीजिये"—सर्वोदयी जी ने चुनौती दी—"समाज में विषमता सदा रही है। ईश्वर की प्रेरणा से मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होने वाली सद्भावना ही इस विषमता का उपाय कर सकती है, समझे आप !"

कामरेड ने इनकार में सिर हिला दिया—"हरगिज़ नहीं, आपका अभिप्राय है कि ईश्वर समाज में विषमता उत्पन्न करता है और फिर उस विषमता को दूर करने के लिये मनुष्य के हृदय में सद्भावना उत्पन्न करता है। यह अच्छा मजाक है ? ईश्वर की प्रेरणा और ईश्वर के नाम

पर पाये अधिकार से ही शोषक वर्ग ने अपने स्वार्थ के लिये समाज में विषमता पैदा की है और श्रमिक वर्ग और स्त्रियों को अपने भोग और सेवा का साधन बनाया है। रूस में सवसाधारण जनता का भ्रम दूर हो जाने से ईश्वर की प्रेरणा मिट गई। इसलिये जनता को विषमता दूर करने का अवसर मिल गया........"

मौजी ने इन्हें टोक कर विस्मय के स्वर में पूछ डाला—"कामरेड क्या कहते जा रहे हैं ? क्या नाखून और होंठ रंग कर एक गांव की कीमत की साड़ी में चाकलेट की तरह लिपटी, और एक आदमी की उम्र भर की कमाई की कीमत की मोटर में बैठ कर चलने वाली महिलाओं को भी आप शोषित कहेंगे ? इनसे बड़ा शोषक कौन होगा ?"

"नहीं वह शोषक नहीं, शोषित ही हैं"—कामरेड ने आग्रह किया—"शोषण तो वह कर सकता है जिसके हाथ में शक्ति हो ! सम्पन्न लोगों के विनोद का खिलौना, यह बेचारी क्या शोषण करेंगी ? इनसे खेलने वाले जिस तरह चाहते हैं इन्हें रखते हैं। जलसे के समय अपना शौक पूरा करने के लिये आप बैंड बजाने वालों को कमाण्डर-इन-चीफ़ की वर्दी पहना दें तो वे बेचारे कमाण्डर-इन-चीफ नहीं बन जायेंगे, रहेंगे आपके शौक का साधन ही। ऐसे ही सम्पन्न श्रेणी की हाथ, पांव और मुँह रंग कर मोटर पर सवारी करने वाली महिलाओं का अपनी कोई व्यक्तित्व नहीं। वे 'किसी की श्रीमती जी' हैं। उनके श्रीमान की स्थिति के अनुसार ही उनका आदर है। यह आदर वास्तव में उनका नहीं, उनके श्रीमान के खिलौने का या उनके श्रीमान का ही है। सीधी बात है, आप बड़े साहब के कुत्ते से भी डरते हैं। वह आपको भोंके तो भी उसे सहसा मार बैठने का साहस नहीं होता ! जिस व्यक्ति का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं, उससे अधिक शोषित कौन होगा ? अगर यह श्रीमतियां अपनी इस स्थिति पर गर्व करती हैं तो यह इनकी मनुष्यत्वहीन, व्यक्तित्वहीन अत्यन्त गिरी हुई मानसिक अवस्था का परिणाम है।"

अपनी बात रही जाती देख मार्क्सवादी ने सर्वोदयी जी को सम्बोधन किया—"आप कहते हैं कि स्त्रियों के घर की चार दिवारी से

बाहर निकल कर रोजगार ढूँढ़ने से समाज का संकट और बेकारी बढ़ेगी ?"

"हाँ सो तो होगा ही"—सर्वोदयी जी ने चारों ओर देख कर अपनी बात दोहरायी—"सब जानते हैं, ऐसा तो होगा ही !"

"हम कहते हैं ऐसा नहीं होगा।"—मार्क्सवादी ने अपनी हथेली पर मुक्का मार कर अपनी बात पर बल दिया—"रूस में ऐसा नहीं हुआ और भारत में भी ऐसा नहीं होगा। मध्यम श्रेणी की स्त्रियाँ आज दिन समाज के लिये आवश्यक पदार्थों की पैदावार में भाग नहीं लेतीं परन्तु वे पदार्थों का उपयोग या खर्च तो कम नहीं करतीं ? यदि वे कुछ उपयोगी काम करने लगेंगी तो इससे समाज को हानि होगी या लाभ ?"

"परन्तु भाई काम है कहाँ ?"—भद्र पुरुष ने प्रश्न किया—"योंही लोग बेकार हो रहे हैं। एक हजार स्त्रियाँ क्लर्क बनने के लिये दफ़्तरों की ओर भागेंगी तो एक हजार क्लर्क बेकार हो जायंगे और क्लर्क इतने अधिक हो जायंगे तो उनकी तनख्वाह स्वयम कम हो जायगी। बाजार में चीजों की रसाई और जरूरत के हिसाब से ही तो चीजों के दाम पड़ते हैं।"

"आप अर्थ शास्त्र की बात कर रहे हैं।" –मार्क्सवादी बोले—"कि बाजार में किस पदार्थ की माँग कितनी है और वह पदार्थ कितना मिल सकता है, इस हिसाब से पदार्थ के दाम निश्चित होते हैं। पदार्थ की माँग और उसकी रसाई के हिसाब का प्रभाव भी दामों पर पड़ता है परन्तु दामों पर कई दूसरी बातों का भी असर पड़ता है। किसी एक वस्तु की माँग सीमित हो सकती है परन्तु श्रम-शक्ति की मांग की सीमा नहीं। क्योंकि श्रम-शक्ति केवल एक ही वस्तु तो उत्पन्न नहीं करती ? वह सैकड़ों पदार्थ उत्पन्न करती है। श्रम शक्ति का दाम तब घटता है जब मजदूर अपना श्रम मुनाफ़ाखोर के हाथ बेचता है। जिस समाज में पदार्थों को उपयोग के लिये पैदा किया जाता है और जिस समाज में जनता के लिये सभी प्रकार के पदार्थ अधिक से अधिक उत्पन्न करने की जरूरत हो, वहाँ ऐसा नहीं होगा।"

"क्या आप समझते हैं कि समाज के सर्वसाधारण को जिन पदार्थों

की जितनी आवश्यकता है, वह सब पूरी हो रही है, और अधिक पैदावार करने की ज़रूरत नहीं है ?"

स्वयम् भद्र पुरुष ने ही ऊँचे स्वर में विरोध किया—"कौन कहता है आवश्यक चीज़ें मिल रही हैं ?....जितनी चाहियें, उसकी चौथाई भी तो नहीं मिल रहीं, मकान नहीं, कपड़ा नहीं, खाना नहीं, दवाई नहीं, कुछ भी तो नहीं मिल रहा !"

"तो फिर समाज में कोई भी व्यक्ति बेकार क्यों रहे ? और समाज की स्त्रियों के पैदावार में भाग लेने से काम करने वालों की संख्या ज़रूरत से अधिक हो जाने का भय आप को कैसे हो सकता है ?"—मार्क्सवादी ने पूछा और बोले—"समाज में काम और पैदावार करने वालों की संख्या जितनी अधिक होगी, पैदावार उतनी ही अधिक हो सकेगी, उतना ही समाज का कल्याण होगा। यदि आप पैदावार को कुछ व्यक्तियों के मुनाफ़े का साधन बनादें और उन्हें मुनाफ़ा न होने पर पैदावार रोक दें, तो बात दूसरी है। मुनाफ़ा कमाने के लिये श्रम शक्ति का मूल्य (मज़दूरी) कम रखा जाता है और मज़दूरी कम रखने के लिए कुछ लोगों को बेकार रखना भी ज़रूरी हो जाता है।"

"इसके अतिरिक्त"—दूसरों को चुप देखकर मार्क्सवादी बोलते ही चले गये—"यह कौन न्याय है कि पुरुषों को कारोबार ढूंढ़ने में असुविधा हो जायगी, इसलिये स्त्रियाँ पिंजरों में बन्द रह कर, पुरुषों की मोहताज और गुलाम बनी रहें ? समाज के पूर्ण विकास के लिये समाज के आधे भाग स्त्री का सहयोग आवश्यक है। स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता स्त्री का मानवी अधिकार है। आर्थिक स्वतंत्रता के बिना स्वतंत्रता का कुछ अर्थ नहीं, वह खिलवाड़ मात्र है। पूंजीवादी मनोवृत्ति स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता का विरोध कर स्त्री को अपने भोग की वस्तु बनाये रखना चाहती है।"

अब की बार वैज्ञानिक मार्क्सवादी को सम्बोधन कर बोले—"आप बात करते हैं स्त्री के आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने की परन्तु पूंजीवादी संस्कृति से प्रभावित पढ़ी-लिखी महिला की महत्वाकांक्षा आत्म-निर्भर होने की है ही नहीं। वह आत्म-निर्भरता की जिम्मेवारी नहीं

चाहती। वह चाहती है, पुरुष से लाड़ और नाज़बरदारी ! वह चाहती है, मिल-मालिक या आई० सी० एस० पति। एम० ए० और एम० बी०, बी० एस० तक अपनी पढ़ाई पर रुपया फूँक कर वह चाहती है केवल बैरे पर हुक्म चलाना ! उसका बी० ए०, एम० ए० उपयोगिता के लिये नहीं, पति फँसाने का लेबल मात्र है। वह चाहती है, भीड़ में उसके लिये राह छोड़ दीजिये, सभा में उसे आगे कुर्सी दे दीजिये ! वह चाहती है, कागज़ में लिपटी बोतल की तरह, शरीर की रेखायें दिखा कर समाज में थिरकना। अपने निर्वाह के लिये कमाना वह अपने नारीत्व की बेकदरी समझती है। वह दफ्तर में या मिल में काम करने से बेहतर मर जाना समझती है। उसकी पढ़ाई का उपयोग यह है कि वह ठोड़ी पर उँगली रख कर विस्मय प्रकट कर सकती है "Oh, God ! और गाल पर उँगली रख कर समर्थन कर सकती है—"How lovely !" यह है भद्र श्रेणी की महिला जो 'महिला-आन्दोलन' चलाती हैं। यदि नारी आन्दोलन से समाज का कुछ भला चाहते हैं तो यह आन्दोलन आना चाहिये उन स्त्रियों के हाथ में, जो आर्थिक पराधीनता अनुभव करती हैं और आर्थिक संघर्ष द्वारा आत्म-निर्भरता में विश्वास करती हैं।"

इनके चुप होते ही कामरेड बोल उठे—"पूंजीवादी मनोवृत्ति स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता का विरोध इसलिये करती है कि आर्थिक क्षेत्र में आकर स्त्री जीविका कमाने वाली साधनहीन श्रेणी का अंग और सहायक बन कर इस श्रेणी की शक्ति को बढ़ायेगी। स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता समाजवादी व्यवस्था का अनिवार्य अंग है और स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता समाजवाद की प्राप्ति से और स्थापना में सहायक होगी। इसीलिये पूंजीवादी व्यवस्था स्त्री की गुलामी या पर्दे के आधार पर जमायी गयी प्रतिष्ठा की धारणा के आधार पर उसे कोमल और दयनीय बताकर उसे आर्थिक संघर्ष से दूर रखना चाहती हैं। पूंजीवादी व्यवस्था स्त्री को मोहक बनाने के लिए, उसे नज़ाकत और नखरा सिखाने के लिये, अपने भोग और मनोरंजन के लिए उसे चुलबुलेपन का अवसर देने के लिए 'कलात्मक' शिक्षा देने के लिये तो तैयार है परन्तु स्त्री के शोषण के बन्धन तोड़ कर उसका आत्म-निर्भर बन जाना

पूंजीवादी संस्कृति को स्वीकार नहीं। समाज को शोषण की व्यवस्था में रखने वाले सभी बन्धन पूंजीवादी व्यवस्था के रक्षक हैं। इनमें से किसी भी बन्धन का टूटना पूंजीवादी व्यवस्था को स्वीकार नहीं।"

मार्क्सवादी और कामरेड की बात की यथार्थता को अस्वीकार करने में असमर्थ हो कर महिला और श्रीमती जी ने उत्तर की आशा से सर्वोदयी जी की ओर देखा।

सर्वोदयी जी मुस्करा दिये और मधुर स्वर में बोले—"नारी के लिये तो सेवा का जो ऊँचा आदर्श बापू बता गये हैं, उसके सिवा नारी की मुक्ति कहाँ है ? सेवा के मार्ग में ही नारी की मुक्ति है।"

"बहुत ठीक"—मार्क्सवादी दृढ़ स्वर में बोल उठे—"नारी सेवा का साधन मात्र बनना चाहती है तो उसके लिए बापू के चरणों में स्थान है। यदि वह आत्मनिर्भर, स्वतंत्र मनुष्य बन कर पुरुष के कंधे के बराबर खड़ी होना चाहती है तो उसके लिये मार्क्सवाद का ही मार्ग है।"

४

रामराज और मज़दूर राज की नैतिकता

अभी सवेर ही थी। सर्वोदयी जी, मार्क्सवादी और इतिहासज्ञ क्लब में आगये थे। कोई बहस आरम्भ न होने से वे तीनों उस दिन के अखबार के पन्ने बाँट कर पढ़ रहे थे।

मौजी और जिज्ञासु भी आ गये—"कहिये यह चुप्पी कैसी ?"—पूछ कर वे भी दीवार से पीठ लगा एक ओर बैठ गये ?

जिज्ञासु ने पहले तो मार्क्सवादी की बगल से अखबार में झांका। शहर में चलने वाली सब फिल्मों के नाम पढ़ गये। अखबार में कोई उत्साह अनुभव न कर उन्होंने दीवार से सिर टिका कर मौजी को सम्बोधन किया—"अजी क्या सन्नाटा खींचा हुआ है सब लोगों ने ?.... मौजी भाई, तुम्हीं कुछ सुनाओ !"

"क्या सुनायें भाई"—कुछ भारी आवाज़ में मौजी ने उत्तर दिया-"जुकाम से परेशान........"इनकी बात पूरी भी न हो पायी थी कि पड़ोस में एक 'पुरुषार्थी बन्धु' के नये खुले होटल से ग्रामोफ़ोन जोर से गा उठा—

"आई बहार है, जिया बेकरार है,
आजा मेरे बालमा तेरा इंतज़ार है।"

पास-पड़ोस की अनेक छोटी-मोटी दुकानों के गाहकों को अपने यहाँ बटोर कर उनकी सेवा करने के लिये 'पुरुषार्थी बन्धु' ने बड़ी सी दुकान चाय-पानी और खाने-पीने की खोली है। गाहकों के मनोविनोद के लिये और सड़क पर चलते लोगों को आकर्षित करने के लिये वे

फिल्मी गानों के नये-नये रिकार्ड ग्रामोफोन पर लाउड स्पीकर लगा कर बजाते रहते हैं।

"लो सुनलो, हमें परेशान करने की क्या जरूरत ?"—मौजी ने सड़क से आते गीत के स्वर की ओर संकेत कर उत्तर दिया—"सुन लो, यह डिब्बे का गाना !"

"डिब्बे का गाना कैसा ?"—ठोड़ी उठा सर्वोदयी जी ने जिज्ञासु से प्रश्न किया।

"अरे भाई जैसे डिब्बे का दूध होता है"—मौजी रूमाल से नाक पोंछते हुये बोले—"गैय्या विलायत में और दूध अपने घर में ! गैय्या को बछड़ा दिखा कर पुचकारने की जरूरत नहीं। जब चाहा रातबिरात डिब्बा खोल लिया, वैसे ही खुशामद की जरूरत नहीं, गाने वाली बम्बई-कलकत्ता में रहे, आपका जी चाहा रिकार्ड लगा लिया।"

अपने हाथ का अखबार एक ओर रख मार्क्सवादी ने गम्भीरता से कहा—"भाई ग्रामोफ़ोन और रेडियो से गरीब आदमियों का बड़ा भारी उपकार हो गया। पहले गाना, मुजरा रईसों और दरबारियों की ही चीज़ थी। हम तुम चाहते कि कोई कलावंत हमारे लिये गा दे तो अपने बस की तो बात थी नहीं। अब गाने वाला चाहे एक गाने के सौ पाँच सौ रुपये ले सकता है परन्तु आप चार पैसे का चाय का प्याला खरीदिये और गाना सुनिये मुफ्त में ! यह है विज्ञान की बरकत कि आवाज़ को गले से, गीत को गाने वाले से, कला को कलाकार से अलग कर लिया ?"

"लेकिन यह भी अमीरों के ही लिये है ?"—जिज्ञासु बोले-"गरीब आदमी बेचारा कहाँ ग्रामोफोन खरीद सकता है ?"

इतिहासज्ञ ने भी हाथ का अखबार रख दिया और बोले—"गरीब आदमी ग्रामोफ़ोन नहीं खरीद सकते लेकिन सड़क पर टहलते-टहलते गाना तो सुन सकते हैं। फर्ज़ कीजिये, अकबर, शाहजहां का ज़माना होता। यह फिल्म में गाने वाली बीबी जी शाही महल में बन्द कर दी गयी होतीं। हम और आप इनका गाना सुन पाते ?"

"गाना गया भाड़ में"—भद्र पुरुष आकर एक ओर बैठे ही थे, बोले—"रोटी तो पेट भर खाते थे सब लोग ?"

इतिहासज्ञ ने विस्मय प्रकट कर कहा—"कौन जाने; सब लोग भर पेट खाते थे या नहीं ? अकबर, शाहजहाँ जरूर मुर्ग मुसल्लम खाते थे और शीराजी शराब भी हिमालय से लाई गई बरफ़ में ठण्डी करके पीते थे ।"

"तो दूसरे लोग भी पेट भर कर खाना खाते थे, दस-पाँच को खिलाकर खाते थे । अब तो तीन छटांक आटा और तीन छटांक चावल मिलता है, भैया ! कोई क्या खाये और क्या खिलाये ।"—भद्र पुरुष ने अपनी बात दोहराई ।

सन्देह प्रकट करने के लिये सिर हिलाते हुये इतिहासज्ञ बोले—"हमें तो बहुत सन्देह है कि सब लोग पेट भर कर मन चाहा खाते रहे हों और जरूरत भर कपड़ा पाते हों ? सम्भव नहीं जान पड़ता ।"

"क्या अजीब बात कहते हो तुम भी"—राष्ट्रीय ने अपने राष्ट्रीय-गौरव का अपमान अनुभव कर खिन्नता प्रकट की—"चार आने का मन भर तो अनाज बिकता था उस जमाने में; फिर भी लोग भूखे रहते होंगे ?"

"अनाज तो चार आने का मन भर मिलता था"—मार्क्सवादी बीच में बोले—"पर चार आने भी मिलते थे या नहीं, यह भी तो प्रश्न है । कहने को तो आज कल कागज के टुकड़ों (नोट) से सब कुछ खरीदा जा सकता है । परन्तु वह कागज का टुकड़ा पा लेना ही तो बड़ी बात है, बाबू जी !"

अब सर्वोदयी जी ने भी बोलना आवश्यक समझा—"आपका अभिप्राय है कि इस देश में पहले अधिक कंगाली थी ?"

"इस देश में क्या"—इतिहासज्ञ ने हाथ फैलाकर उत्तर दिया—"अधिकांश जनता के लिये संसार भर में पहले कंगाली ही थी । अब पैदावार के साधन अधिक हैं तो समृद्धि की सम्भावना भी अधिक है ।"

"इसको आप समृद्धि कहते हैं"—विस्मय से भवें ऊँची कर सर्वोदयी ने पूछा ।

इनका समर्थन जिज्ञासु ने किया—"इतिहासज्ञ जी, यह तो आप नयी बात कह रहे हैं। सभी लोगों का विश्वास है कि अंग्रेजी राज्य के शोषण से पूर्व इस देश की अवस्था समृद्ध थी। आप बता रहे हैं कि देश अब समृद्ध हो गया। यह कैसे माना जा सकता है?"

बहुत लम्बी बात कहने के लिये तैयार हो इतिहासज्ञ आगे बढ़े—"सुनिये! अंगरेजी राज में भारत का शोषण बहुत हुआ है, इसमें तो सन्देह की गुंजाइश नहीं। यह भी ठीक है कि अंगरेजों ने अपने व्यापारी स्वार्थ के लिये तत्कालीन भारतीय उद्योग-धन्दों को बरबाद कर दिया, जिससे कंगाली बढ़ी। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि भारत में अंगरेजी राज से पहले साधनहीन श्रेणी का शोषण नहीं था। सभी श्रेणियाँ समृद्ध थीं।

अधिक से अधिक आवश्यकताओं का पूरा होना ही समृद्धि है। इस युग में पहले युगों की अपेक्षा बहुत अधिक लोगों की आवश्यकतायें पहले से बहुत अधिक पूरी होती हैं और मनुष्यों की बुद्धि तथा विचारों का भी विकास पहले से बहुत अधिक है।"

जिज्ञासु ने अपना प्रश्न दोहराया—"आप कहते हैं मनुष्य-समाज पहले से उन्नत और सुखी है?"

"पहले से तो निश्चय ही सुखी है"—बल देकर इतिहासज्ञ ने उत्तर दिया—"अपनी आवश्यकतायें पूरी कर सकने के अवसर की दृष्टि से आज मध्यम श्रेणी का साधारण व्यक्ति उतना ही समृद्ध और सुखी है जितना किसी समय कोई राजा होता था।" सर्वसाधारण पहले की अपेक्षा स्वतंत्र भी अधिक है। हां, व्यक्तिगत निरंकुशता का अवसर आज बेशक नहीं है।

"भाई इतना तो हम दावे से कह सकते हैं"—मौजी जरा उचक कर बोले—"अगर कोई आदमी जहाँगीर को बिजली की एक टार्च भेंट कर देता तो जहाँगीर ने सौ-पचास गाँव बख्शीश में दे दिये होते, और अगर कोई उन्हें मोटर दे देता तो उन्होंने अपनी सल्तनत बक्श दी होती"—मौजी स्वयम् ही जोर से कहकहा लगा कर हँस पड़े—"मोटर को वे

जिन्न की करामात से कम क्या समझते ? या इसे भगवान की शक्ति का चमत्कार मान लेते।"

"वाह खूब कहा आपने"—राष्ट्रीय ने समर्थन किया। "जहाँगीर बुद्धू ही रहे होंगे ?"

मौजी अपने स्थान पर और उचक गये—"बुद्धू ? आप गौर तो कीजिये, न आग, तेल और न रोशनी ? इससे बड़ा जादू या चमत्कार क्या होता उस ज़माने में ? जनाब, टार्च दिखाने वाले को तो उस ज़माने के लोग फरिश्ता या जिन्न समझ लेते !" मौजी कहकहा लगा कर हँस पड़े।

उस कहकहे की उपेक्षा कर इतिहासज्ञ ने अपनी बात जारी रखी—"आपको इस बात से विस्मय होता है ? मामूली बात लीजिये, पिछले समय में यदि कहीं पत्र भेजना होता तो केवल कोई राजा ही दस-पांच घुड़सवारों को इकट्ठा कर अपना पत्र भेज सकता था। आज आप तीन पैसे का पोस्ट कार्ड प्रतिदिन एक हज़ार मील दूर तक भेज सकते हैं। यह सुविधा शहनशाह अकबर को भी न थी। आज अधिकांश शहरों में आपके घर के भीतर हर समय जल बहता रहता है। नलकों का चलन होने से पहले एक घर में इतनी इफ़रात से खर्च करने के लिये पानी लाया जाता तो दस-दस कहार लगते ! जितने जल से आज आप नहाते हैं; कुयें से पानी खींच कर नहाने वाला कभी नहीं नहा सकता। इतने जल से नहाने के लिये राजा को बीस कहार रखने पड़ते। सब आदमी न सही, हजारों आदमी आजकल दिन-रात पंखे के नीचे बैठते हैं। वाजिदअली शाह के ज़माने में यदि सारा हिन्दुस्तान पंखे खींचने और डुलाने के काम में जोत दिया जाता तो भी इतने आदमियों को पंखा नहीं किया जा सकता था। उस ज़माने में जहांगीर तंजेब का एक अँगरखा पहनते थे और उनकी मलका मुअज्ज़मा मलमल की साड़ी, तो दो-तीन गाँव की कातने वालियाँ और जुलाहे इस कपड़े की कताई बुनाई में लगते होंगे तब जाकर साल-छः मास में वह पोशाक बनती होगी ! आज इक्के चलाने वाले तक मशीन से बने तंजेब के कुर्ते पहनते हैं और अपनी घरवाली को मलमल की साड़ी पहनाते हैं। उस ज़माने के बीसियों शहनशाहों में एक जहांगीर कश्मीर देख आये। आज हर

साल दसियों हजार आदमी कश्मीर, शिमले की हवा खा आते हैं। फिर, जहांगीर कश्मीर जाते थे तो दिल्ली-आगरा का हाल जानने के लिये उनका दिल धड़कता रहता होगा। आज लखनऊ-दिल्ली के गुड़-तेल बेचने वाले भी अपने घर बैठ कर कलकत्ता-बम्बई से फ़ोन पर भाव तोल करते हैं। अरे भाई! सीधी बात है, मनुष्य विज्ञान के विकास से और यंत्रों की सहायता से प्रकृति पर विजय पा रहा है। अपनी आवश्यकतायें आज वह प्रकृति से पहले की अपेक्षा अधिक सुविधा से पूरी कर सकता है। जो बातें पहले राजाओं के लिये न्यामतें थीं, आज सर्व-साधारण के लिये सुलभ हैं! पहले मनुष्य पैदावार व्यक्तिगत रूप से करता था। उसकी पैदावार की शक्ति कम थी। आज पैदावार सामुहिक और सामाजिक ढंग से होती है। पैदावार की शक्ति सौगुना बढ़ गई है....।"

"परन्तु यह हम कैसे मानलें कि उस युग में समाज के अधिकांश लोग भूखे-नंगे रहते थे?"—जिज्ञासु ने अपने प्रश्न पर जोर दिया।

"यह आप को इसलिये मानना पड़ेगा कि उस समय पैदावार की शक्ति ही मनुष्य-समाज में कम थी। प्रमाण चाहते हैं आप?"—इतिहासज्ञ ने पूछा और बोले—"उस युग में, जब यंत्रों का आविष्कार नहीं हुआ था, एक समृद्ध परिवार के लिये जल भरने के लिये दस कहारों की जरूरत थी या नहीं? परिवार के लोगों की पालकियाँ उठाने के लिये दस आदमियों की जरूरत थी या नहीं? उन्हें पंखा करने के लिए कुछ आदमियों की जरूरत थी या नहीं? और समृद्ध परिवारों को इन सब कामों के लिये आदमी इफ़रात से मिल जाते थे। स्पष्ट है कि भूमि या पैदावार के साधनों की मालिक श्रेणी आदमियों की बहुत बड़ी संख्या को ऐसी अवस्था में विवश रखती होगी कि यह लोग अपना पेट भरने के लिये मालिकों की किसी भी सेवा के लिये इच्छुक रहें। स्वतंत्रता से पेट भरने का अवसर हाथ में रहने पर कोई मोहताजी करना पसन्द क्यों करेगा? परिस्थितियों से विवश हुये बिना दूसरे की सेवा करने के लिए कोई क्यों तैयार होगा? उस समय ऐसे सेवकों की कमी न होना, इस बात का प्रमाण है कि इस श्रेणी के लोग अपना पेट भरने के लिये दूसरी श्रेणी के या पैदावार के साधनों की स्वामी श्रेणी के बस में थे, उनकी दया पर निर्भर करते थे। ज्यों-ज्यों यंत्रों का

विकास होता गया, पैदावार तथा आवश्यकता पूर्ति के लिये कम आदमियों की आवश्यकता होने लगी, साधनों की मालिक श्रेणी अपने आधीन श्रेणी के पालन की जिम्मेवारी अपने कंधों से टालने लगी और मेहनत-मजदूरी करने वाली श्रेणी पहले की अपेक्षा स्वतंत्र होने लगी। यहाँ तक कि दासता की प्रथा जो एक समय ईश्वर की आज्ञा और धर्म का अंग समझी जाती थी, पाप समझी जाने लगी। सब मनुष्यों में समानता की धारणा पैदा हो गयी। यह समाज के जीवन का ढंग, अर्थात आवश्यक वस्तुओं की पैदावार का ढंग यंत्रों के विकास के कारण बदल जाने से ही सम्भव हो सका।"

सर्वोदयी जी इतिहासज्ञ की इस लम्बी व्याख्या को अस्वीकार करने के लिये सिर हिलाकर बोले—"आप कहते हैं, यंत्रों के विकास ने मनुष्यों को स्वतंत्र कर दिया है, इससे मनुष्य उन्नत हो गया है ? बिलकुल गलत"—उन्होंने अपने हाथ की उँगलियों की चोंच बना कर बिलकुल ग़लत का संकेत करते हुए बहुत जोर से कहा—"बिलकुल गलत ! आप कहते हैं, मनुष्य प्रकृति को जीत रहा है ? यह बात भी ग़लत है। यंत्रों के विकास ने मनुष्य को प्रकृति का दास बना दिया है, अपना दास बना लिया है, मनुष्य पशु हो गया है। इस युग में यंत्रों के ही प्रभाव से मनुष्यों में असत्य और हिंसा पैदा हो गयी है। मनुष्य का घोर नैतिक पतन हो गया है। इस के विपरीत उस युग में हमारे ऋषियों ने सब मनुष्यों को एक समान बताया था। स्वामी और दास की बात पर इतना तूमार बाँधते हैं आप ? परन्तु वह तो प्रेम का सम्बन्ध था, पिता पुत्र का ! तब आप का यह श्रेणी संघर्ष कहाँ था, जो आज संसार को अपनी आग में जलाये दे रहा है ?"

राष्ट्रीय ने भी उनका समर्थन किया—"हाँ हमारे ऋषियों ने तो मनुष्य-मात्र को एक समान माना है। यह कोई आपके पश्चिमी समाजवाद की खूबी नहीं है। पश्चिमी यंत्र सभ्यता ने तो हमें निर्बल और गुलाम ही बनाया है ? प्राचीन काल में हम कितने उन्नत थे ?"

वैज्ञानिक जोर से हँस दिये और बोले—"यन्त्रों ने आपको किस तरह निर्बल बनाया साहब ! क्या इसलिये कि पहले जंगली जानवर

मनुष्यों को फाड़कर खा जाते थे, अब नहीं खा सकते ! क्या इसलिये कि पहले नदी पार करने में आप डूब जाते थे अब सात समुद्र लाँघ जाते हैं । क्या इसलिये कि आप अब आकाश में उड़ सकते हैं ! क्या इसलिये कि पहले कोई रोग होने पर ईश्वर की इच्छा मान कर विवश हो जाते थे और अब रोगों का इलाज हो जाता है ! रही आपके ऋषियों की बात कि उन्होंने सब मनुष्यों को एक समान बताया था ! उन्होंने क्षत्रिय का धर्म शासन करना और शूद्र और दास का धर्म सेवा करना ही तो बताया था । आप बताइये कि व्यवहार में क्या होता था ! दास लोग थे या नहीं ! दास और स्वामी को शासन और सेवा करने वाले को आप एक समान मान सकते हैं ? पूर्वजों ने मनुष्यों की समानता का उपदेश तो जरूर दिया परन्तु दासों और सेवकों का मनुष्य ही नहीं माना जाता था ।"

सर्वोदयी जी ने कुछ कहने के लिये मुँह खोला ही था कि कामरेड उनसे पहले ही बोल पड़े—"रही बात स्वामी-दास के पिता-पुत्र के पाखण्ड की, सो भैया जो आदमी मुर्गियों का खाने के लिये पालता है, वह कुत्ते-बिल्ली से मुर्गी की रक्षा करता ही है । अपने सामर्थ्य और समझ-बूझ से उन्हें अच्छा दाना भी देता है कि खूब मोटी हो जायें । रोग होने पर उनका इलाज भी करता है । कभी बेटा कह कर पुचकारता भी है लेकिन मुर्गियों का उपकार करने के लिये सत्य और अहिंसा से मुर्गियों की उन्नति करने के लिये कोई मुर्गी पालता हो, अभी तक देखा-सुना नहीं गया । ऐसे ही दासों को बेटा बना कर खिलाने-पिलाने के लिये ही रक्खा जाता हो, यह समझ में नहीं आता । दासता की प्रथा के अन्त से मनुष्य-समाज का पतन हो गया है, जनता का अपने शासन के लिये राय देने का अधिकार माँगना मानवता का पतन है और प्रजा का बाप बनकर राजा के ईश्वरीय अधिकार से प्रजा पर निरंकुश शासन करना समाज के लिये कल्याणकारी था तो हम इस धोखे में आने से रहे !"

कामरेड की इस उग्रता का उत्तर सर्वोदय जी ने शांत और आत्म-तुष्ट मुस्कराहट से दिया और बोले—"धोखा ? मनुष्य को धोखा कौन

दे सकता है ? मनुष्य स्वयम् ही धोखे में पड़ता है। यह जड़ता की पूजा, समाज का यंत्रों का दास बन जाना, यंत्रों के लिये मनुष्य को बलिदान कर देना ही धोखा है। आवश्यकताओं को बढ़ाना, उनकी पूर्ति के लिये पागल हो जाना, अधिकारों का लोभ, शक्ति प्राप्त करने की इच्छा, यह सब हिंसा की प्रवृत्ति है जो आवश्यकताओं को बढ़ाने, उनके लिये संघर्ष करने और यंत्रों की दासता से पैदा होती है। इससे मनुष्य की उन्नति नहीं, पतन ही हो रहा है।"

"आपके विचार में आवश्यकता का न होना, यंत्रों से दूर रहना यदि शक्ति, समृद्धि और मनुष्यता के विकास का लक्षण है तो आप पशुता की ही पूजा करना चाहते हैं। पशुओं की आवश्यकतायें बहुत कम होती हैं और यंत्रों का उपयोग तो वे करते ही नहीं!"—मार्क्सवादी सर्वोदयी जी को सम्बोधन कर बोले।

सर्वोदयी जी इस तर्क से परास्त हो कर झेंपे नहीं, बोले—"अवश्य, अवश्य! हिंसा और लोभ में फँसे मनुष्यों से पशु बहुत अच्छे हैं। वे आपस में एक दूसरे की धाड़-फाड़ तो नहीं करते। वे वासना के दास तो नहीं।"

मार्क्सवादी ने आगे बढ़ कर पूछा—"कौन कहता है पशुओं में हिंसा नहीं या लोभ नहीं ? पशु घास के एक तिनके के लिये लड़ मरते हैं, एक दूसरे को फाड़ कर खा जाते हैं। पशु संयम से अपने आप को वश नहीं करता, वह विवश होता है। पशु संतोष नहीं करता, पशु असमर्थ होता है; समझे आप! आप किस पशु की सहन-शीलता और संतोष की प्रशंसा करते हैं और उसका अनुकरण करने की शिक्षा मनुष्यों को देते हैं ? क्या हम शेर, बाघ, भेड़िये और बाज का अनुकरण करें ? आप चाहते हैं कि सर्व-साधारण जनता गाय, बैल, गधे और कुत्ते का अनुकरण करे !....ठीक है न ? इसलिये कि वे आपके वश में रहते हैं। सर्व साधारण जनता की समृद्ध होने की इच्छा और अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के यत्न की निन्दा शासक श्रेणी के गुरु लोग इसीलिये करते हैं कि सर्व-साधारण जनता समृद्धि को उनसे बंटाने न लगे। उनके बंधन से मुक्त होने की चेष्टा न करे ?

स्वतंत्रता का अर्थ है, अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूर्ण करने का स्वतंत्र अवसर, वैज्ञानिक उन्नति और यंत्रों का उपयोग उत्पादन के काम को सामुहिक रूप देकर, श्रमिक जनता को मालिक के मुकाबले में संगठित होने का अवसर देता है। इससे श्रमिक वर्ग की शक्ति मालिक श्रेणी से बढ़ जाती है। पशुता की शान्ति और संतोष की प्रशंसा कर यंत्रों के उपयोग से समाज के समृद्ध होने की चेष्टा की निन्दा करना, सर्वसाधारण को पशु का अनुकरण करने की शिक्षा देना शासक श्रेणी की धूर्तता है। यह श्रेणी मनुष्यता और शासन का अधिकार अपने हाथ में रखना चाहती है और सर्वसाधारण को विवश पशु बनाये रखना चाहती है। यंत्रों का उपयोग उत्पादन के काम में मनुष्य को प्रकृति पर विजय पाने योग्य बना देता है। यंत्रों का उपयोग ही मनुष्यता का लक्षण है, यंत्रों का विकास ही मनुष्य की उन्नति है। आप मालिक वर्ग के स्वार्थ की रक्षा के लिये यत्रों के उपयोग की निन्दा करते हैं, मनुष्य की उन्नति का विरोध करते हैं। आप चाहते हैं सर्व-साधारण जनता यंत्रों पर अश्रद्धा कर उन्हें शासक श्रेणी के हाथ में रहने दे और अपना संतोष अपनी आवश्यकताओं को घटा कर करे।"

सर्वोदयी जी को कामरेड की कड़ी भाषा अच्छी नहीं लगी। उँगली उठाकर ऊँचे स्वर में उन्होंने विरोध किया—"समाजवादी लोग स्वयम् जनता को धोखा देते हैं, इसलिये दूसरों का धोखेबाज कह कर गाली देना चाहते हैं। समाजवाद का सबसे बड़ा धोखा तो यह है कि सब लोग स्वतंत्र और सुखी हो जायेंगे। बापू ने तो स्पष्ट कहा है कि—"अधिकांश को तो गरीब ही रहना है इसलिये समाज में समानता लाने के लिए सभी को गरीबी की जिन्दगी बितानी चाहिये!" बापू ने तो भूमि और कारोबार के मालिकों को कहा है कि तुम लोग अपनी सम्पत्ति, धन, दौलत को अपना माल मत समझो। तुम केवल इन चीजों के संरक्षक हो, धन सब जनता का है! बापू पर श्रेणी पक्षपात का दोष लगाने से बड़ा अन्याय क्या होगा? वह तो दरिद्र-नारायण का पुजारी था, सम्पत्ति का नहीं। उसने अपनी इच्छा से गरीबी का जीवन बिताया क्योंकि वह दरिद्रता का उपासक था।"

"यही तो सबसे बड़ा धोखा है"—कामरेड फूट पड़े—"गाँधी

जी अपनी इच्छा से गरीबी में रहे, यह उनका शौक था। शौक से गरीबी में रहने से गरीबी का दुख अनुभव नहीं हो सकता। यह कहना भी गलत है कि गांधी जी गरीबी में रहे। उनकी कौन आवश्यकता अपूर्ण रहती थी? देश की पूँजीपति श्रेणी के वकील होने की हैसियत से करोड़ों रुपये और सब साधन उनके हाथ में रहते थे। और फिर गाँधी जी के गरीबी में रहने से गरीबों को क्या लाभ हुआ? मुझे बीमार देख कर यदि आप भी बीमारी समेट लें तो मेरी क्या सहायता होगी? इसका परिणाम यही होगा कि मैं भी बीमारी के इलाज की चिन्ता न करूँ! सोचूँ कि इतना बड़ा आदमी अपनी इच्छा से बीमार हो गया तो मेरे बीमार होने में क्या अन्याय? मैं सन्तोष कर लूँ। गाँधी जी ने जो बात की, अपनी श्रेणी, मालिक श्रेणी के लाभ की ही की। उनकी नैतिकता का आधार ही मालिक श्रेणी के अधिकार की रक्षा था। इसी कारण मालिक श्रेणी ने गांधी जी के लिये वे सब साधन प्रस्तुत किये जिनसे वे सर्वसाधारण जनता को अपना अनुगामी बना सकते थे। जब गाँधी जी ने देखा कि जनता को साम्यवाद और कम्युनिज्म की ओर आकर्षण हो रहा है तो उन्होंने अपने आप को सबसे बड़ा साम्यवादी और कम्युनिस्ट एलान कर दिया कि कम्युनिज्म ही चाहते हो तो भी मेरी ही बात मानो! गाँधी जी ने जमींदारों और पूँजीपतियों को अपनी इच्छा से सारे देश की सम्पत्ति के संरक्षक बन जाने का अधिकार दे दिया। यह सरासर जनता की आँखों में धूल झोंकने की कोशिश है कि पैदावार के साधनों का स्वामित्व जमींदारों और पूँजीपतियों के हाथ में रहते हुये भी जनता शोषण से बच सकती है। अब तक शोषक लोग शोषितों को शस्त्र की शक्ति से बश में रखते आये हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है। परन्तु समाज में आ गये आर्थिक परिवर्तनों से पैदावार करने वाली शोषित श्रेणी का महत्व और शक्ति समाज में बढ़ती जा रही है। शोषित श्रेणी को अब शस्त्रों की शक्ति से दबाये रखना सम्भव नहीं। इसलिये गाँधीवाद मालिक श्रेणी को शोषितों का बाप बना कर पैदावार के साधनों को अपने हाथ में रखने का नैतिक अधिकार उन्हें देना चाहता है और इसे मालिक-श्रेणी का त्याग और सेवा-भाव बताता है।"

"गाँधीवाद है क्या ?"—मार्क्सवादी बीच में बोल उठे—"ईश्वर की प्रेरणा और धर्म की दुहाई देकर मालिक श्रेणी के अधिकारों की रक्षा करना। यंत्रों के विकास का विरोध गाँधी जी ने इसलिये किया कि औद्योगीकरण से सर्वहारा मजदूर वर्ग की संख्या बढ़ती है, उन्हें संगठित होने का अवसर मिल कर उनमें अपनी श्रेणी के हित की चेतना पैदा होती है। यह बात मालिक श्रेणी के हित के विरुद्ध है। गाँधी जी मालिक श्रेणी के हित और उनके अधिकार की रक्षा के लिये मानव समाज के विकास को रोकने के लिये तैयार थे। यंत्रों के विकास के अभाव में जनता के अधिकांश को भूखा और नंगा रखने के लिये वे तैयार थे। इसीलिये यह सबसे बड़ा प्रपंच था कि अधिकांश को तो गरीब ही रहना है, सब लोग गरीबी में रहें! जब मनुष्य समाज के पास औद्योगिक विकास द्वारा सम्पूर्ण समाज की आवश्यकतायें पूर्ण करने के साधन हैं, तो सब लोग गरीब क्यों रहें ? आप देखते हैं, जिन देशों में यांत्रिक विकास हुआ है, वहां के सर्वसाधारण लोगों की अवस्था उन देशों के लोगों से कहीं अधिक अच्छी है, जहाँ यांत्रिक विकास नहीं हुआ। हम स्वयम् देखते हैं कि यंत्रों के विकास से हमारे देश में भी अनेक वस्तुयें, जो पहले सर्वसाधारण के लिए दुर्लभ थी, सुलभ हो गयीं। उदाहरणतः आवश्यक जल, रात के समय रोशनी, यात्रा के साधन, औषधियाँ और कपड़ा भी पहले की अपेक्षा अब कहीं अधिक मात्रा में मिल सकता है। औद्योगिक ढंग से की जाने वाली पैदावार आवश्यकतानुसार बढ़ायी जा सकती है। पूँजीवादी व्यवस्था में मालिक का मुनाफ़ा पैदावार की मात्रा निश्चित करता है। यदि पैदावार का उद्देश्य जनता की आवश्यकतायें पूरी करना ही हो तो पैदावार बहुत बढ़ जायगी। गाँधी जी का उपदेश—'अधिकांश को तो गरीब ही रहना है'—तब गलत हो जायगा। लेकिन गांधीवाद जनता की आवश्यकता पूर्ति नहीं चाहता वह चाहता है, मालिक के मुनाफ़े के अधिकार की रक्षा! वह मालिक को उपदेश देता है कि अपने मिल्कियत के अधिकार की रक्षा के लिये कुर्बानी करो, गरीबी से रहो। गरीबों में अपने उदाहरण से सुख और समृद्धि से रहने की इच्छा न पैदा होने दो।"

सर्वोदयी जी फिर बोले—"यह आप के मन में यंत्रों के विकास

की, पश्चिमी संस्कृति और नैतिकता के प्रभाव से पैदा हुई हिंसा वृत्ति का परिणाम है कि आप मालिक लोगों में कोई शुभ-कामना मानने के लिये तैयार ही नहीं। भूमि और कारोबार के मालिक ईश्वर के विधान से हमारे आर्थिक संगठन के संरक्षक बन कर पैदा हुये हैं। उनका कर्त्तव्य है कि अपने लिये निर्धारित कार्य को पूरा करें। हमारी वर्ण व्यवस्था एक आर्थिक संगठन है। आप यह कैसे कह सकते हैं कि मालिक शोषण करने या मुनाफ़ा कमाने के लिये ही कारोबार करते हैं। हमारे यहाँ तो जनक जैसे राजा त्याग का आदर्श बना गये हैं। वे केवल दान और प्रजा पालन के लिये ही धन संचय करते थे। हमारी संस्कृति में धन और जड़ की पूजा का आदर्श नहीं रहा। हमने इसे माया और भ्रम ही समझा है। जैसे मज़दूर किसान अपनी जीविका के लिये कोई काम करता है, उसी प्रकार उद्योग-धन्दे चलाने वाला कारोबारी आदमी भी अपना कर्त्तव्य पूरा करता है। उसे भी अपना काम करने की उतनी ही नैतिक और कानूनी स्वतंत्रता होनी चाहिये जितनी किसान मज़दूर को। प्रश्न तो नैतिकता, आदर्श और संस्कृति का है। हमें अपना आदर्श जड़वाद, सांसारिक माया के लिये संघर्ष को लक्ष्य बनाने वाला रावण-राज्य नहीं बनाना। हमारा आदर्श शाश्वत सत्य, अहिंसा का राम-राज्य है, जो जीवन की पूर्णता मृत्यु के बाद उस लोक में भगवान की प्राप्ति में देखता है।"

वैज्ञानिक बोले—"सर्वोदयी जी मृत्यु के पश्चात् दूसरा लोक हो, या न भी हो! आप भी उस लोक को देख कर नहीं आये हैं! हम अपना आदर्श उस लोक की प्राप्ति के बजाय पहले इस लोक में ही सफलता और सामर्थ्य क्यों न समझें?"

"परन्तु इस लोक को भी तो आप नैतिकता, सत्य और अहिंसा के आदर्श से गिर कर नहीं पा सकते"—सर्वोदयी जी ने चेतावनी दी। "उसके बिना तो समाज में अव्यवस्था और हिंसा ही हिंसा हो जायगी।"

"नैतिकता के हम भी कायल हैं"—मार्क्सवादी ने अपने सीने पर हाथ रख कर स्वीकार किया—"परन्तु नैतिकता है क्या? नैतिकता है समाज की परिस्थितियों के अनुकूल ऐसे नियम और व्यवस्था, जो पूरे

समाज को जीवित रहने का अवसर दे सकें और सभी व्यक्तियों को विकास के लिये अधिक से अधिक और समान अवसर दे सके।"

कुछ देर पहले शुद्ध साहित्यिक भी आ पहुँचे थे। वे मार्क्सवादी की नैतिकता की व्याख्या के प्रति विरोध में सिर हिला कर बोले--"नैतिकता और जीवन के आदर्श को आप समाज की आर्थिक परिस्थितियों से नहीं बांध सकते? समाज की परिस्थितियाँ बदलने वाली चीज़ है परन्तु नैतिकता और जीवन का आदर्श एक स्थिर, शाश्वत वस्तु है, जिससे व्यक्ति और समाज सभी तरह की परिस्थितियों में प्रेरणा ग्रहण करता है। वह मनुष्य की अन्तर चेतना से उत्पन्न होती है। नैतिकता और सत्य को आप नित्य नहीं बदल सकते।"

"नित्य तो नहीं परन्तु समाज की परिस्थितियाँ बदलने पर नैतिकता, सत्य और अहिंसा की धारणा भी बदलती रही है और समाज के भौतिक साधनों, परिस्थितियों और आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन आने पर नैतिकता को निश्चय ही बदलना चाहिये"—मार्क्सवादी ने एक हाथ का घूंसा दूसरे हाथ की हथेली पर मार कर घोषणा की—"नैतिकता तथा सत्य और अहिंसा के सम्बन्ध में सभी श्रेणियों और समाजों की धारणा अपने ज्ञान, विश्वास और हित-रक्षा के आधार पर होती है। हमारे विचार और हमारी धारणायें हमारे अस्तित्व की स्थिति से भिन्न और स्वतंत्र नहीं हो सकते। हमारा ज्ञान बढ़ने, जीवन की परिस्थितियाँ बदलने पर हमारे विचार और नैतिकता कैसे नहीं बदलेगी?"

"बस यही तो भौतिकवादी मार्क्सवादियों की सबसे बड़ी भूल है"—सर्वोदयी जी ने उदारता से मुस्करा कर सुझाया, अपना हाथ फैलाकर वे बोले—"मेरे भाई! तुम लोग नैतिकता, न्याय और आचार को अपने भौतिक ज्ञान और आर्थिक विचारों से निश्चित करते हो, जो पल-पल पर बदलती हैं"—उन्होंने चुटकी बजाकर भौतिक परिस्थितियों की क्षणिकता का संकेत किया—"और भौतिकता है क्या? केवल अपना स्वार्थ! इसलिये आप की सत्य और न्याय की धारणा सदा सीमित रहेगी। आप व्यापक और स्थायी सत्य तक कभी पहुँच नहीं

सकते। व्यापक और शाश्वत सत्य परमार्थ और अहिंसा के आधार पर ही पाया जा सकता है! उसका मूल है सदा एकरस ईश्वर की प्रेरणा।"

"ईश्वर को आप बीच में न घसीटें तो अच्छा हो!"—मार्क्सवादी ने हाथ उठा कर चेतावनी दी—"कारण यह कि आप कहेंगे कि ईश्वर की यह आज्ञा है। और हम ईश्वर से पूछ न पायेंगे कि उनकी आज्ञा क्या है? न्याय का यह कायदा है कि गवाही ऐसी होनी चाहिये जिसकी प्रमाणिकता की तहकीकात हो सके?"

जिज्ञासु, भद्र पुरुष और शुद्ध साहित्यिक के होठों पर मुस्कराहट देख कामरेड झट से बोल उठे—"यह तो शोषकों का पुराना ढोंग है कि जिस बात को जबरदस्ती मनवाना हो, उसके लिये अज्ञेय ईश्वर का भय दिखा दिया जाय। गांधी जो क्या करते थे, जिस बात को तर्क से साबित नहीं कर सके, कह दिया–मुझे ईश्वर की ऐसी ही प्रेरणा है। जिस बात के लिये दलील नहीं दे सके, उसे मनवाने के लिये उपवास कर बैठे। गांधी जी ईश्वर की प्रेरणा से हिन्दू-मुस्लिम दंगों के विरोध में उपवास करते रहे और ईश्वर को ऐसी इच्छा हुई कि दंगे बढ़ते बढ़ते यह नौबत आई कि देश हिन्दुस्तान, पाकिस्तान में बँट गया। जिन्ना कहते रहे कि अल्लाह का हुक्म है, पाकिस्तान बनेगा। हुक्म चल गया अंग्रेज का।"

"देखिये साहब"—इतिहासज्ञ गम्भीरता से बोले–"हमारी समस्या है आर्थिक और राजनैतिक! इसमें ईश्वर और मजहब को लाना ठीक नहीं। हमें मजदूर-किसान मात्र को एक उद्देश्य और एक कार्यक्रम के लिये एक साथ लेकर चलना है। हम संसार भर के मेहनत कशों की एकता और उनके एक उद्देश्य में विश्वास रखते हैं। ईश्वर और मजहब करा देते हैं झगड़ा! क्योंकि इस विषय में लोगों की आस्था और कल्पना भिन्न-भिन्न और परस्पर-विरोधी है। आप ही सोचिये अंग्रेज सरकार के विरुद्ध इस देश की जनता की लड़ाई साझी थी, जनता की आर्थिक और राजनैतिक मांगें साझी थी। पहले तो अंग्रेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों में पक्षपात से टुकड़े बाँट कर उन्हें लड़ाने की कोशिश की।

और फिर देश की जनता की आर्थिक और राजनैतिक मांगों को धार्मिक और आध्यात्मिक रूप देकर गांधी जी ने मजहब को बीच में ला खड़ा किया। गांधी जी ने कहा, राजनीति को ईश्वर, विश्वास और मजहब के आधार पर चलाओ ! मजहब और ईश्वर विश्वास हिन्दू, मुसलमान का अलग-अलग और परस्पर विरोधी था। परिणाम यह हुआ कि जनता का साझा मोर्चा मजहबी टुकड़ों में बँट गया। गांधी जी ने हिन्दू आदर्श पर रामराज की पुकार हिन्दुओं को बहलाने के लिये उठाई तो दूसरी ओर से इस्लामी राज और पाकिस्तान की पुकार उठी।"

"यह क्या, आप क्या कह रहे हैं"—उत्तेजना में अपने आसन की मुद्रा बदल कर सर्वोदयी जी ने पुकारा—"आपका मतलब है कि बापू ने हिन्दू मुसलमानों को लड़ाया ?"

इतिहासज्ञ सर्वोदयी जी की उत्तेजना से परास्त नहीं हुये और बोले—"हमने कहा न कि इस देश की जनता की आर्थिक और राजनैतिक मांगें साझी होने पर भी साम्प्रदायिक विश्वास के नाते जनता के दो भागों में परम्परा-गत विरोध चला आता है। राजनैतिक और आर्थिक माँगों को साम्प्रदायिकता का रंग देने का परिणाम और क्या हो सकता था ? इस पर गांधी जी बहुत जोर देकर यह भी कहते थे कि मैं हिन्दू पहले हूँ और हिन्दुस्तानी बाद में ! उन्होंने यह भी कहा कि मेरे लिये अपनी आत्मा की मुक्ति का महत्व देश की मुक्ति से अधिक है। गांधी जी ने हिन्दूपन का एलान किया तो मुहम्मदअली क्या कम थे ? उन्होंने एलान किया—"मेरे लिये सबसे पहले है इसलाम ! अदना से अदना मुसलमान मेरी नजर में गांधी से अधिक पवित्र है।" हो गयी लड़ाई शुरू ! आप ही बताइये, मुसलमान हिन्दुत्व के आदर्श को और हिन्दू मुक्ति के आदर्श को पूरा करने के लिये कांग्रेस के पीछे कैसे लगे रहते ?"

"कांग्रेस एक राजनैतिक संस्था थी। उसे हिन्दुत्व और साम्प्रदायिकता का रंग दिया गांधी जी ने ! मुसलमानों ने यह अनुभव किया कि कांग्रेस हिन्दू संस्था है, कांग्रेस की स्वतंत्रता का आदर्श हिन्दू-राज का आदर्श है और वे कांग्रेस से निकल भागे। कांग्रेस वास्तव में हिन्दुओं

की ही संस्था रह गयी। मुसलमानों ने कांग्रेस का विरोध करना और अपनी अलग, हिन्दू विरोधी आजादी का आन्दोलन चलाना आरम्भ कर दिया, जिसका परिणाम हुआ देश का बटवारा! गांधी जी के हरिजन उद्धार आन्दोलन का भी यही प्रभाव हुआ। दलित जातियों की वास्तविक समस्या है उनकी आर्थिक पराधीनता। गांधी जी ने दलित जातियों की आर्थिक समस्या को नहीं उठाया; उठाया उनके मंदिर-प्रवेश और उन्हें कुओं पर चढ़ाने की समस्या को! हरिजन कुछ मन्दिरों में गये या न गये, इससे उनका क्या भला हुआ? परन्तु यह अवश्य हुआ कि कट्टर मुसलिम जनता ने समझ लिया कि कांग्रेस हिन्दू साम्प्रदायिक संगठन है और उसका विरोध करने के लिये 'तबलीग' का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ? परिणाम हुआ, हिन्दू-मुसलिम विरोध की बढ़ती।"

सब लोगों को इतिहासज्ञ की बात ध्यान और विस्मय से सुनते देख उत्तेजित स्वर में सर्वोदयी जी ने पुकारा—"बापू ने साम्प्रादायिक विरोध बढ़ाया; यह आप कैसे कह सकते हैं? बापू ने तो साम्प्रदायिक दंगे मिटाने के लिये अपनी जान की बाजी लगा दी। क्या आप देहली की दीवार के समीप साम्प्रदायिक दंगे शान्त करने के लिये बाप के ऐतिहासिक उपवास व्रत को भूल गये?"

"भूल नहीं गये, वह भी याद है" इतिहासज्ञ ने स्वीकार किया—"गाँधी जी ने राजनैतिक क्षेत्र में साम्प्रदायिक भेद को बढ़ाने के कारण पैदा किये और फिर अपने आध्यात्मिक प्रभाव से उन्हें शान्त करने का भी यत्न किया। पहली बात का प्रभाव तो हिन्दू-मुसलमानों के परम्परागत संस्कारों के कारण बहुत जल्दी हो गया। उनकी आध्यात्मिकता का प्रभाव उतना नहीं हुआ। क्योंकि मुसलमानों की साम्प्रदायिक धारणा गांधी जी की आध्यात्मिकता को स्वीकार न कर सकती थी। गांधी जी ने अपने आपको हिन्दू एलान कर के भी अपनी निष्पक्षता प्रमाणित करने का बहुत यत्न किया। उन्होंने यत्न किया कि मुसलमान भी उन्हें अपना धार्मिक गुरू मान लें परन्तु मुसलमानों की साम्प्रदायिक संकीर्णता ने यह स्वीकार नहीं किया। यहाँ तक कि गांधी जी के

खास मित्र मौलाना मुहम्मदअली ही कह गये कि अदना से अदना मुसलमान भी मेरे नज़दीक गांधी से बड़ा है। गांधी जी ने साम्प्रदायिक भेद के कारण तो पैदा कर दिये परन्तु उन कारणों को दूर किये बिना, अपने प्राण दे देने की धौंस देकर साम्प्रदायिक द्वेष को दबाना भी चाहा। साम्प्रदायिक भेद इस तरह दूर नहीं हो सकते थे। क्योंकि यह युक्ति नहीं, दबाव था। गांधी जी ने मुसलमानों के प्रति अपनी उदारता दिखाकर उनका हृदय परिवर्तन करना चाहा। संकीर्ण विचार हिन्दुओं ने समझा कि गांधी जी मुसलमानों को अपना भक्त बनाने के लिये हिन्दू-हितों को न्योछावर कर रहे हैं। परिणाम में मुस्लिम विरोधी हिन्दू हित और हिन्दू राष्ट्र के आन्दोलन को उत्साह मिला।

"गांधी जी की हत्या देश के लिये अत्यन्त खेद और कलंक की बात है परन्तु वह हत्या इस बात का प्रमाण थी कि साम्प्रदायिक एकता के लिये गांधी जी के उपवास व्यर्थ गये। उनकी हत्या हिन्दू-मुसलिम विरोधों और वैमनस्य की चरम सीमा का दिग्दर्शन था। हिन्दू-मुसलमानों का साम्प्रदायिक वैमनस्य दूर करने का उपाय है, शोषित हिन्दू-मुसलमानों में आर्थिक मांगों पर, श्रेणी के आधार पर एकता। ऐसी एकता गांधी जी को मंजूर नहीं थी। क्योंकि यह एकता शोषित हिन्दू-मुसलमानों में उनका शोषण करने वाली, उनकी साझी शत्रु पूंजीपति श्रेणी के विरुद्ध, शोषक व्यवस्था को बदलने के लिये ही हो सकती थी। गांधी जी जनता के अपने स्वार्थ के ख्याल से नहीं, अपने हुक्म से जनता की एकता कराना चाहते थे। उसमें जितनी सफलता हुई, उससे अधिक की सम्भावना हो ही नहीं सकती थी। गोडसे द्वारा की गयी गांधी जी की मूखता पूर्ण सशस्त्र हिंसा एक मूर्खता द्वारा दूसरी मूर्खता का उपाय करने की हिमाकत ही थी।"

सर्वोदयी जी विरोध में "वाक आउट" करने के लिये खड़े हो गये परन्तु उन्हें बैठा कर प्रसंग को दूसरे ढंग से चलाया गया :—

"नैतिकता, न्याय और अन्याय के झगड़े में ईश्वर को घसीटना इसलिये उचित नहीं" मार्क्सवादी बोले—"क्योंकि ईश्वर की प्रेरणा को मनुष्य अपनी बुद्धि और विश्वास से ही ग्रहण करता है। जैसा आप

का विश्वास और बुद्धि होगी, वैसी ही आप ईश्वर की प्रेरणा समझ लेंगे। आप नित्य जीवन में यही बात देखते हैं। ईश्वरवादी के विश्वास के अनुसार तो ईश्वर को न मानने वाले भी ईश्वर के विधान से स्वतंत्र नहीं है न, तो फिर नर-मांस खाने वाले, नंगे रहने वाले जंगली लोगों को, चांगकाई शेक और चीन के कम्युनिस्टों को, हिटलर और स्टैलिन को, जिन्ना और गाँधी को ईश्वर भिन्न-भिन्न प्रेरणा देता रहा। जिसका जैसा विश्वास था, उसने वैसी प्रेरणा प्राप्त कर ली। प्रेरणा को आप का विश्वास और बुद्धि ही ग्रहण करती है। आप अपने निर्णय को ईश्वर की आज्ञा का नाम दे देते हैं। यह ईश्वर की शक्ति को अपने नाम के साथ जोड़ लेने का उपाय है।"

"तो फिर नैतिकता, सत्य और न्याय तो कुछ न हुआ?"—निराशा से जिज्ञासु बोले—"वह सदा बदलता रहेगा। सदा द्वन्द्व होता रहेगा।"

"हाँ! सदा द्वन्द्व होता रहेगा!"—सर्वोदयी जी ने उँगली उठा कर सुझाया—"द्वन्द्व की निरन्तर हिंसा से हमें ईश्वर का विश्वास और प्रेरणा ही बचा सकती है। मानेंगे या नहीं आप?"

"हम यह मानेंगे कि समय समय पर द्वन्द्व होता रहा है और सामाजिक परिस्थितियों या समाज की आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल द्वन्द्व का समाधान भी होता रहा है!"—इतिहासज्ञ बोले परन्तु मार्क्सवादी ने उन्हें टोक दिया—"समाज की व्यवस्था में द्वन्द्व का अर्थ क्या है? द्वन्द्व एक ऐतिहासिक क्रम है इसका अर्थ है कि समाज अपने जीवन निर्वाह के साधनों के अनुकूल आवश्यक पदार्थों की पैदावार करने और समाज में उनका बँटवारा करने की व्यवस्था बनाता है। जब जीवन निर्वाह या पैदावार के नये-नये साधन समाज में पैदा हो जाते हैं तो पैदावार के पुराने क्रम में और बँटवारे के क्रम में भी परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होती है। परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव होना और इसके लिये प्रयत्न ही व्यवस्था के पुराने चले आये क्रम में द्वन्द्व पैदा हो जाना है, यह द्वन्द्व सभी पदार्थों और स्थितियों में होता है, उनके विकास का स्वाभाविक गुण और साधन है। पदार्थों और परिस्थितियों में दो बातें होती हैं, एक उनका परिमाण (Quantity) और दूसरा उनका गुण

(Quality) वस्तुओं के परिमाण और गुण का परस्पर सम्बन्ध रहता है, वे एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। यदि किसी वस्तु या जीव का परिमाण या शरीर बढ़ता जायगा तो एक सीमा पर उसका गुण भी बदल जायगा। इसी प्रकार किसी वस्तु या जीव में कोई गुण बढ़ता जायगा तो एक सीमा पर यह गुण उस वस्तु के परिमाण या जीव के शरीर में भी परिवर्त्तन कर देगा। परिमाण घटने-बढ़ने से गुण में और गुण घटने-बढ़ने से परिमाण में भी परिवर्तन हो जाता है। यह बात वस्तुओं और जीवों के ही बारे में ही नहीं, समाज और समूह के बारे में उनकी व्यवस्था और विधान के बारे में भी सत्य है। समाज की भौतिक और आर्थिक परिस्थितियों में द्वन्द्व से ही नये विधान अथवा नयी नैतिकता, सत्य और न्याय का भी विकास होता है; यही तो मार्क्सवाद का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है। सम्पूर्ण इतिहास इसका साक्षी है। मनुष्य-समाज के इतिहास में इसी नियम के अनुसार अनेक व्यवस्थायें आयी हैं। उन व्यवस्थाओं से समाज का जितना विकास सम्भव होता है वह हो चुकने पर द्वन्द्व द्वारा व्यवस्था में फिर परिवर्तन हो जाता है।"

"द्वन्द्व से, हिंसा से कभी सत्य और न्याय का विकास हो सकता है?" सर्वोदयी जी ने घोर विरोध किया—"असम्भव! द्वन्द्व और हिंसा से हिंसा और अन्याय का ही विकास होगा। इतिहास हमें यही बताता है!"

"इतिहास आपको क्या बताता है"—भौंवें सिकोड़ कर इतिहासज्ञ ने प्रश्न किया और बोले—"सुनिये, मनु महाराज के समय शूद्रों, अछूतों और स्त्रियों की समस्या थी। इसीलिये उन्होंने इस विषय में विधान बनाया। मनु महाराज का परिचय ईश्वर से उतना ही रहा होगा जितना गाँधी जी का था? मनु महाराज को ईश्वर की प्रेरणा यह थी कि समाज के कल्याण के लिये सेवकों, शूद्रों, दासों और स्त्रियों को अपने मालिकों के आधीन रहना चाहिये। मनु महाराज को विधान बनाने की आवश्यकता इसीलिये अनुभव हुई कि समाज में द्वन्द्व था। मनु महाराज ने उस द्वन्द्व का समाधान मालिकों के लिये दासों और

स्त्रियों की श्रमशक्ति को आवश्यक समझ, मालिकों की आर्थिक प्रभुता के आधार पर कर दिया। मनु महाराज का यह समाधान बहुत समय तक चला परन्तु यह विधान शाश्वत नहीं हो सका। उत्पादन के साधनों में विकास और परिवर्तन हो जाने पर दास श्रेणी मालिक की सम्पत्ति न रहकर सामन्तों की रैय्यत बन गयी और इसके बाद और परिवर्तन आने पर रैय्यत मजदूरी और तनखाह लेकर अपना श्रम बेचने वाली श्रेणी बन गई। समाज की आर्थिक स्थिति में द्वन्द्व आ कर दास प्रथा मिट जाने और स्वतंत्र मजदूर श्रेणी पैदा हो जाने को आप द्वन्द्व से हिंसा पैदा होना कहेंगे? इसी प्रकार मनु महाराज ने अपने समय की आर्थिक स्थिति के आधार पर शूद्रों तथा स्त्रियों की जो अधिकार-हीन स्थिति निश्चय कर दी थी, वह हजारों वर्षों तक चलने पर भी शाश्वत नहीं हो सकी। समाज में हो जाने वाले आर्थिक तथा दूसरे द्वन्द्वों ने शूद्रों, (हरिजनों) और स्त्रियों की स्थति वैसी नहीं रहने दी जैसी मनुमहाराज ने निश्चित की थी। शूद्रों और विधवा हिन्दू स्त्रियों को अपने समाज में स्थान देने के लिये तैयार मुस्लिम संस्कृति के भारत में आ जाने पर और अछूतों को अपना राजनैतिक सहायक बनाने वाले अंग्रेजों की नीति से पैदा हो जाने वाले द्वन्द्वों का प्रभाव हिन्दू-समाज की नैतिकता और शूद्रों की स्थिति पर पड़ा या नहीं? भगवान ने मनु महाराज को प्रेरणा दी थी कि शूद्रों को अपने आधीन रखने के लिये उन्हें शिक्षा से उन्नति करने या उनमें महत्वाकांक्षा पैदा होने का अवसर मत दो! भगवान ने शूद्रों को मुसलमानों और अंग्रेजों का सहायक बनते देख गाँधी जी को प्रेरणा दी कि शूद्रों को बहलाने के लिये मन्दिरों के द्वार खोल दो! कहिये, समय देखकर भगवान की ही राय बदल गई या पहले प्रेरणा समझने वालों की भूल थी?"

मार्क्सवादी बोल उठे—"आप यह तो मानेंगे कि नैतिकता और आचार के नियमों की आवश्यकता मनुष्यों के परस्पर सम्बन्धों को नियमित करने के लिये ही है। हमारे पूर्वजों ने धर्म और नैतिकता के जो दस लक्षण—धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धैर्य, विद्या, सत्य और अक्रोध बताये हैं वे सब मनुष्यों के परस्पर व्यवहार के बारे में ही लागू होते हैं.......।"

जैसे कुछ याद आगया हो, उन्होंने बात बदली—"आप यह बताइये यदि कोई मनुष्य ऐसे द्वीप में रहता हो, जहां उसे दूसरे मनुष्यों से कभी सम्पर्क न पड़ता हो और न सम्पर्क पड़ने की सम्भावना हो तो इस व्यक्ति के लिये आप नैतिक आदर्श कैसे निश्चय करेंगे ? उसके लिये तो नैतिकता की आवश्यकता और मूल्य कुछ नहीं है न ?"

"उसके लिये नैतिकता के प्रकट होने का अवसर नहीं है"—शुद्ध-साहित्यिक जी ने उत्तर दिया।

"यही सही,"—मार्क्सवादी बोले—"परिणाम यह निकला कि नैतिकता समाज में मनुष्यों के परस्पर सम्बन्धों की सुव्यवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं है"—उन्हें निरुत्तर होते देख मार्क्सवादी दूसरी उंगली उठाकर बोले—"दूसरी बात, जीवन रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थों को परस्पर सहायता से उत्पन्न करने और समाज में उन्हें समुचित रूप से बाँटने के सिलसिले में ही मनुष्य परस्पर सम्पर्क में आते हैं। समाज के जीवित रह सकने के लिये आवश्यक इस आर्थिक व्यवस्था को ठीक ढंग से चलाने के लिये मनुष्यों के आपसी व्यवहार किस प्रकार के हों, इसी के लिये नैतिकता और व्यवस्था की जरूरत होती है और यही नैतिकता का आधार भी है। यदि आवश्यक पदार्थों को पैदा करने के ढंग बदल जायंगे, उनके बटवारे के ढंग में भी परिवर्तन आजायगा तो नैतिकता को भी बदलना ही होगा। जैसा कि आप दासों का प्रयोग करने वाले और मशीनों का प्रयोग करने वाले समाज की नैतिकता में भेद देखते ही हैं। मानते हैं या नहीं आप ?"

"आपकी बात का अभिप्राय तो यह हो जाता है"—भद्र पुरुष बोले—"कि नैतिकता, सत्य और न्याय कोई स्वतः सिद्ध शाश्वत वस्तु नहीं है। जिस समय समाज की जैसी परिस्थिति और आवश्यकता हो, नैतिकता को वैसे ढाल लिया जाय।"

कामरेड टोक बैठे—"इसका यह भी अर्थ होता है कि समाज में जो श्रेणी पैदावार के साधनों की स्वामी होगी वही श्रेणी समाज की नैतिकता का भी निश्चय करेगी।"

निराशा प्रकट करने के लिये दोनों हाथ फैला कर सर्वोदय जी

दुहाई देते हुए बोले—"तो सब कुछ क्षुद्र स्वार्थी मनुष्य के हाथ की ही बात हो गयी ! मनुष्य के स्वार्थ का ही खेल हो गया ?"

विस्मय प्रकट करने के लिये ठोड़ी उठा और आंखें फैला कर वैज्ञानिक ने पूछा—"इतने निराश क्यों हो गये सर्वोदयी जी ?........आप समाज को ईश्वर प्रेरणा की नकेल से काबूकर यह नकेल अपने हाथ में रखना क्यों आवश्यक समझते हैं ? मनुष्य की स्वतंत्रता से आप को निराशा क्यों होती है ? आप की यह ईश्वर का प्रतिनिधि होने के दावे से बनायी गयी नैतिकता रामराज की नैतिकता है। दूसरी ओर है मेहनत करने वाली श्रेणी द्वारा न्याय और समान अवसर की रक्षा की नैतिकता।"

"ऐतिहासिक तथ्य तो यही है"—इतिहासिज्ञ ने विवशता प्रकट करते हुए स्वीकार किया—"यदि नैतिकता मनुष्यों के परस्पर सम्बन्धों से ही पैदा होती है, उसी के लिए उसकी जरूरत है तो मनुष्यों के परस्पर सम्बन्धों से ही उसका निर्णय भी होगा; सदा होता भी रहा है, जैसा कि आप मनु महाराज के समय और अपने समय की तुलना में देखते हैं। ऐसे ही, पूंजीवादी व्यवस्था की नैतिकता मुनाफ़ा कमा कर बटोरी हुई सम्पत्ति से दूसरों के श्रम का फल छीनते जाने के अवसर के लिये उपयोगी नियमों के आधार पर बनी है। समाजवादी समाज में सम्पत्ति और पैदावार के बटवारे की व्यवस्था दूसरे ढंग से होने से नैतिकता में भी परिवर्तन हो गया है।"

"मुनाफ़ा कमाकर बटोरी हुई सम्पत्ति से दूसरों के श्रम का फल छीनने के अवसर की नैतिकता से आपका अभिप्राय ?"—सर्वोदयी जी ने प्रश्न किया—"नैतिकता का आधार तो अहिंसा है।"

"आपका कहना ठीक है कि नैतिकता का आधार अहिंसा है"—मार्क्सवादी ने स्वीकार किया—"परन्तु हिंसा क्या है ? हिंसा का मतलब है दुख देना। कोई व्यक्ति दुख और हिंसा तभी अनुभव करता है जब उसके शरीर या स्वार्थ पर चोट आती है। कोई व्यक्ति दूसरे पर तभी आघात करता है जब अपनी रक्षा करना चाहता है या अपना स्वार्थ पूरा करना चाहता है। स्वार्थ क्या है ? जीवित रह सकने के

लिये अवसर और इसके लिये आवश्यक साधनों की चाह। जीवन के लिये उपयोगी पदार्थ और इन पदार्थों को पैदा करने के साधन ही सम्पत्ति हैं। पूंजीवादी नैतिकता में किसी दूसरे की सम्पत्ति का एक पैसा उठा लेना अनतिक है, अपराध है, और हिंसा है। परतु मुनाफे के नाम पर एक हज़ार आदमियों की मेहनत का फल हड़प लेना पूंजीवादी नैतिकता में न हिंसा है न अपराध !"

"परन्तु मेहनत और पैसे में अन्तर क्या है ?"-कामरेड बोले —पैसा मेहनत से ही बनता है यदि किसी को बिना दिये पैसा ले लेना अन्याय है तो किसी की मेहनत ले कर मेहनत का पूरा फल या दाम न देना भी अन्याय है।"

"नहीं; पूंजीवादी नैतिकता का न्याय इस में भेद करता"—वैज्ञानिक ने उत्तर दिया—"यों तो मेहनत का फल ही पैसा है परन्तु मेहनत और पैसे में भेद है। मेहनत की शक्ति रहती है मज़दूर के शरीर में और पैसा रहता है पूंजीपति की तिजोरी में। पूंजीवाद की नैतिकता मजदूर की श्रम-शक्ति से लाभ उठाने के लिये सम्पत्ति की मालिक श्रेणी द्वारा बनाई गयी नैतिकता है, इसलिये यह नैतिकता पूंजीपति के ही स्वार्थ की रक्षा करती है। न्याय के लिये कानून निश्चित करने का अवसर श्रम-शक्ति को नहीं देती—विशेष रूप से सर्वोदयी जी को सुना कर उन्होंने कहा—"मज़दूर को कठिनता से निर्वाह मात्र के लायक मज़दूरी दे कर उसकी मेहनत से पैदा हुआ बहुत अधिक माल या उस माल का मूल्य हड़प लेना ठीक ऐसा है जैसे पशु को आठ आने का भूसा खिला कर एक रुपये का दूध दोह लेना। गांधी जी पशुओं का दूध पीना तो अहिंसा के आदर्श से गिरना समझते थे परन्तु मजदूर के श्रम से मुनाफ़ा उठाना उन्हें अन्याय नहीं जंचा, यह है राम-राज की नैतिकता !

"रामराजी नैतिकता में पूंजीपति श्रेणी मेहनत करने वाली श्रेणी के श्रम के फल से सुख भोगना उसी प्रकार नैतिक समझती है जैसे मनुष्य पशुओं के श्रम से लाभ उठाना अपने मनुष्यत्व का अधिकार समझता है। पशु के श्रम और दूध से लाभ उठाने का अधिकार मनुष्य पशु को अपने वश में रखने की शक्ति के कारण पाता है; वैसे ही पूंजीवाद की रामराजी

नैतिकता मेहनत करने वाली श्रेणी को अपने वश में रखने के लिये, मजदूर और नौकर के श्रम से होने वाली पैदावार में से केवल उतना भाग देती है, जिससे वे पूंजीपति श्रेणी के मोहताज बने रहें, स्वयं पैदा-वार के साधन न बना लें। इसी बल पर पूंजीपति श्रेणी मुनाफा कमा सकती है। मुनाफ़ा ही पूंजीवाद की आधार शिला है। परन्तु मार्क्सवादी और कम्युनिस्ट नैतिकता में मुनाफा वैसा ही अपराध है जैसा कि किसी दूसरे के धन की चोरी। पूंजीवाद में मेहनत करने वाली श्रेणी स्वतंत्र नहीं हो सकती। सामन्तवाद और दास-प्रथा के समय मेहनत करने वालों को खरीद कर जीवन भर के लिये गुलाम बना लिया जाता था, पूंजीवाद में उन्हें साधनहीन बना कर मजदूरी से पराधीन बना लिया जाता है। मेहनत करने वाली श्रेणी की स्वतंत्रता केवल समाजवाद में ही सम्भव है। मानव-समाज के इतिहास में मजदूर राज की नैतिकता पूंजीवादी नैतिकता से अगला और उन्नत कदम है और ऊंची नैतिकता और अहिंसा है।"

"क्या ?"–विस्मय से सर्वोदयी जी ने पूछा–"श्रेणी संघर्ष से उत्पन्न होने वाली मजदूर राज की व्यवस्था ऊंची नैतिकता और अहिंसा है ?"

"निश्चय श्रीमान्"—इतिहासज्ञ बोले—"जिस समय पूँजीवादी व्यवस्था ने सामन्तवादी व्यवस्था को तोड़ कर कृषक दासों (रैयत) को स्वतंत्र किया था, बेगार का अधिकार समाप्त किया था, यंत्रों के उपयोग से पैदावार को बढ़ाया था उस समय वह उन्नतिशील और विकास शील थी। पूँजीवादी व्यवस्था मनुष्य-समाज को विकास का जितना अवसर दे सकती थी, दे चुकी। अब यह व्यवस्था समाज के विकास के मार्ग में रुकावट बन रही है। भविष्य में विकास के मार्ग को खोलना मजदूर व्यवस्था का ही काम है। मजदूर व्यवस्था निश्चय ही विकास की अगली मंजिल होगी। मजदूर व्यवस्था पूँजीवादी व्यवस्था के समय समाज में शेष रही और उत्पन्न हुई हिंसा को समाप्त करेगी। श्रेणी संघर्ष की बात आप कहते हैं; सामन्तशाही से समाज की शासन व्यवस्था अपने हाथ में लेने के लिये पूंजीवादी व्यवस्था को कम संघर्ष नहीं करना पड़ा। उस संघर्ष में राजाओं के सिर कटे और प्रजा ने

भी खून में गोते लगाये, तब जा कर पूँजीवादी नैतिकता के आदर्श 'मनुष्य-मात्र को समान अधिकार' और 'सब को जीविका कमाने और व्यवसाय करने की समान स्वतंत्रता', का सिद्धान्त माना गया। आज आप मनुष्यों की कानूनी समानता और जीविका उपार्जन की स्वतंत्रता को मानवता का प्राकृतिक अधिकार और जन्मसिद्ध अधिकार कहते हैं परन्तु दासता की प्रथा के युग में, सामन्तशाही के युग में, राज-सत्ता के रामराजी युग में मनुष्य के यह जन्मसिद्ध और प्राकृतिक अधिकार कहाँ थे ? यह सब अधिकार मनुष्य-समाज ने ऐतिहासिक द्वन्द्वों और संघर्षों के परिणाम में ही पाये हैं और नवीन अधिकारों की भूमिका भी तैयार कर दी है। मनुष्य-समाज की नयी मजदूर व्यवस्था समाज में सब व्यक्तियों के लिए समान कानूनी अधिकार से अगला कदम, 'समान अवसर' देगी, और व्यवसायिक स्वतंत्रता से अगला कदम, 'व्यक्तियों को अपने श्रम का पूरा फल पाने का समान अवसर' देगी। जब तक सब व्यक्तियों को जीविका कमाने और अपने श्रम का पूरा फल पाने का समान अवसर न हो जीविका कमाने की स्वतंत्रता का क्या अर्थ ?"

"पूंजीवादी व्यवस्था का प्रजातंत्र और सब मनुष्यों को समान अधिकार केवल धोखा है"—मार्क्सवादी ने सुझाया—"जब अधिकार के उपयोग करने का सामर्थ्य और अवसर न हो तो अधिकार का लाभ क्या ? यह बात ठीक वैसे ही है कि आप भोजन खाने का अधिकार तो सब व्यक्तियों को दे दें परन्तु भोजन पा सकने का अवसर केवल दो-चार को ही दें। बाद में भूखे मरने वालों को दोष दें कि तुम्हें भी तो सब के समान खाने का अधिकार था। पूंजीवाद कहता है, देश की जनता को समाज की व्यवस्था बनाने और शासन में भाग लेने का, आर्थिक व्यवस्था बनाने का अधिकार समान रूप से है। पूंजीवादी प्रजातंत्र में समाज की व्यवस्था चलाते हैं जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि। इन प्रतिनिधियों के चुनाव के लिये कुछ साधनों की आवश्यकता होती है। ऐसे सब साधनों पर सम्पत्ति की मालिक श्रेणी का ही एकाधिकार है। आप जानते हैं, चुनाव के लिये उम्मीदवार लोग १५ से ५० हजार तक रुपया खर्च करते हैं। आप के देश में कितने आदमी इन साधनों

का उपयोग कर सकने की अवस्था में है ? अधिकांश आदमियों के पास यह साधन बिलकुल हैं ही नहीं। कुछ के पास यह साधन दूसरों की अपेक्षा लाखों गुणा अधिक हैं। ऐसी अवस्था में स्पष्ट है कि केवल सम्पत्ति की मालिक श्रेणी के ही प्रतिनिधि चुने जायँगे, साधनहीन श्रेणी के प्रतिनिधि नहीं। समाजवादी संस्कृति और नैतिकता के विचार से चुनाव के लिये असमान अवसर की ऐसी परिस्थितियों में प्रतिनिधियों का चुनाव होना अन्याय, हिंसा और अनैतिकता है। समाज में कुछ लोगों के सब साधनों का मालिक बने रहने पर और अधिकांश के साधनहीन रहने पर राजनैतिक अधिकारों की समानता की बात केवल प्रपंच है। यह है पूंजीवादी-प्रजातंत्र जिसमें पूँजी को ही खुल खेलने का अवसर रहता है। वास्तविक प्रजातंत्र तो है मजदूर राज का प्रजातंत्र ! जिसमें सब साधन समाज की सांझी सम्पत्ति होने के कारण अवसर की समानता पहली शर्त होगी। अवसर और साधनों क बिना अधिकार केवल धोखा है।"

अपने चेहरे पर सहानुभूति और करुणा का भाव लाकर सर्वोदयी जी ने समझाया—"सम्पत्ति और भौतिक समृद्धि को लक्ष बना कर आप जिस भौतिक संस्कृति (मैटिरियल कलचर) भौतिक नैतिकता और मायावाद को इस देश पर लादना चाहते हैं उससे देश में शांति नहीं हो सकती, संघर्ष और हिंसा हीं बढ़ेगी। उससे न जनता का निस्तार हो सकेगा और न व्यक्ति का ? माया और सांसारिक सम्पति का तो दुगुण ही यह है कि आप जितना इसे पायेंगे, उतनी ही आपकी कामना और लोभ बढ़ते जायेंगे; उतना ही संघर्ष और हिंसा बढ़ती जायगी, व्यक्ति और समाज का पतन होता जायगा।"

"सर्वोदयी जी, आप सम्पत्ति या माया की निन्दा करते हैं परन्तु आप ही बताइये जीवन के साधनों के बिना जीवित कैसे रहा जा सकता है ?"—कामरेड ने भी शांत स्वर में पूछा।

"जीवित रहना ही तो आदर्श नहीं है।"—सर्वोदयी जी ने उत्तर दिया—"यह जीवन तो मोक्ष प्राप्ति अथवा परमात्मा में लीन हो जाने का ही साधन है। इसी आदर्श पर चल कर हम व्यक्तिगत और सामा-

जिक शान्ति प्राप्त कर सकते हैं। अध्यात्मिक शान्ति से मिलने वाले संतोष और सांसारिक सम्पत्ति से मिलने वाले सुख की क्या तुलना? सांसारिक सम्पत्ति को लक्ष मानने वाले लोग पैसे-पैसे के लिये मरते हैं, दूसरे का गला काटते हैं। परन्तु आध्यात्मिक सुख को आदर्श मानने वाले तो राजपाट को भी लात मार जाते हैं। हमारे देश में तो राजा लोग इस आध्यात्मिक सुख के लिये राजपाट छोड़कर चल देते थे। राज भी करते थे तो विदेह होकर, जैसे महाराज जनक! वही सुख हमारे लिये आदर्श होना चाहिये। इस सुख को मनुष्य किसी से संघर्ष किये बिना, किसी का दास बने बिना, यहाँ तक कि प्राकृतिक आवश्यकताओं का भी दास बने बिना, पा सकता है असली स्वतंत्रता और असली सुख तो वही है।"

मार्क्सवादी ने उनकी बात पकड़ कर कहा—"इसका मतलब है कि व्यक्ति नितान्त स्वार्थी हो जाय। समाज के मरने-जीने की चिन्ता न कर केवल अपनी काल्पनिक मुक्ति की ही चिन्ता करे। ऐसे आध्यात्मिक के सुख की खोज करने वाले लोगों को पालने का बोझ समाज के सिर रहता है। यदि सभी लोग माया का बन्धन तोड़ कर आध्यात्मिक सुख की ही बात सोचें तो माया अर्थात् समाज का आर्थिक संगठन ही समाप्त हो जायगा। यदि समाज निष्क्रिय आध्यात्मवादी का पालन न करे तो उसका आध्यात्म भी न चलेगा। जो आध्यात्मवादी चाहता है कि समाज उसका पालन करे और वह समाज के लिये कुछ न करे, उससे बढ़ कर स्वार्थी कौन हो सकता है?"

सर्वोदयी जी का चेहरा आत्मिक संतोष से गम्भीर हो गया। उनकी शान्ति का कुछ प्रभाव साहित्यिक, जिज्ञासु और भद्र पुरुष पर भी पड़ता जान पड़ा परन्तु कामरेड उत्तेजित होकर—"जी हां, आपका उपदेश है कि सर्व-साधारण माया के संघर्ष में न पड़ कर जीवन के मोह से स्वतंत्र हो जाय और सम्पत्ति के मालिक लोग जनता की सम्पत्ति के संरक्षक बने रहें।"

इतिहासज्ञ सर्वोदयी जी की बात से मुस्करा कर बोले—

"आपने जिस अतुलनीय आध्यात्मिक सुख को आदर्श मानने का

उपदेश दिया है, उसका नुसखा नया नहीं है। आज से हजारों वर्ष पूर्व ही ऋषियों ने उसे सुझाया था। परन्तु तब से कितने लोग उसे पा सके ? आपको एक राजा जनक का नाम याद है परन्तु और दूसरे कितने राजा उस सुख से संतुष्ट हो सके ? सर्वसाधारण जनता तो उस आध्यात्मिक सुख को पा नहीं सकी....."

शुद्ध साहित्यिक जी भी शायद उस आध्यात्मिक सुख के पास-पड़ोस में पहुँच रहे थे, हाथ उठा कर वे बोले—"अरे, वह सर्वसाधारण की चीज़ है ? विरले ही, हजारों लाखों में कोई एक ही उस सिद्धि को पा सकता है।"

"ठीक है ठीक है"—इतिहासज्ञ ने साहित्यिक की बात को स्वीकार किया—"यही हम कहना चाहते हैं जब आप मानते हैं वह आध्यात्मिक सुख बिरले ही लोगों के लिये है, सब के लिये नहीं, तो सर्वसाधारण को उसका उपदेश देना धोखा है। और हम समाज की समस्या को सवजनिक रूप से देखना चाहते हैं। उदाहरण के तौर पर कुछ आदमी तैरने में इतने चतुर हो सकते हैं कि बड़ी से बड़ी नदी को बाढ़ के समय भी तैर कर पार कर लेंगे। तैरने का इतना अभ्यास होना प्रशंसा की बात है परन्तु अच्छा तैर सकने के अभ्यास को आदर्श बना कर आप यह निश्चय नहीं कर सकते कि हमें नदियों पर पुल नहीं बनाना चाहिये ! इसी प्रकार यदि विरले ही लोगों के लिये आध्यात्मिक सुख सम्भव भी हो तो उसी को लक्ष बना कर हम समाज में आर्थिक सुव्यवस्था और सर्वसाधारण के लिये जीवन के साधन प्राप्त कर सकने के लिये समान अवसर लाने के संघर्ष की उपेक्षा नहीं कर सकते ? हम चाहते हैं, सब लोगों को जीविका प्राप्त करने का समान अवसर हो, सब लोगों को अपने श्रम का पूरा फल पाने का समान अवसर हो। क्या यह बात आध्यात्मिकता के विरुद्ध है ? समाजवादी नैतिकता में आध्यात्मिक सुख को लक्ष मानने वालों के लिये कोई बाधा नहीं। आप उस सुख के लिये यत्न कीजियेगा, सर्वसाधारण लोग वैसा न कर सकें तो उन्हें रहने दीजियेगा। आपकी रामराजी नैतिकता में सर्वसाधारण के लिये जीवन रक्षा के साधन प्राप्त करने का अवसर नहीं है, हम इसी का उपाय करना चाहते हैं।" आप हमें उपदेश देते हैं आध्यात्मिक सुख से सन्तुष्ट हो जाने का।

"परन्तु सांसारिक साधनों के लिये समाज की यह दौड़ और संघर्ष, आपको यानि व्यक्ति और समाज को कहां ले जा रहा है ? यह आप क्यों नहीं देखते ?"—सर्वोदयी ने चेतावनी दी—"कैसा भयंकर पतन समाज का हो रहा है, ?·······कितनी हिंसा बढ़ रही है ?····इस राह पर चल कर समाज कहां जायगा ?"

फिर सबसे पहले इतिहासज्ञ ही बोल उठे—"समाज का पतन हो रहा है ?····आप कैसे कहते हैं कि समाज का पतन हो रहा है ? आप इस मकान में बैठे हैं जिसमें कांच की खिड़कियां और दरवाज़े लगे हैं। यदि कोई आदमी चाहे तो इन किवाड़ों को मामूली धक्के से तोड़ सकता है परन्तु इस घर में रहने वाले भय से कांपते नहीं रहते। उन्हें भरोसा है कि समाज में अंधेर नहीं है कि रात में जो चाहे उन्हें लूट ले जाये और उनका गला काट जाय ! आज से पाँच सौ या हज़ार वर्ष पूर्व कोई आदमी समाज पर इतना भरोसा कर सकता था ? समाज पर किसी को इतना विश्वास था ? लोग अपनी कमाई की रक्षा के लिये दो गज़ मोटी दीवारें बना कर शहतीरों और लोहे के दरवाज़े लगाते थे, तब भी उनका मन भय से व्याकुल रहता था। आज आप हजारों रुपया लेकर निश्चिन्त अकेले कलकत्ते का सफ़र करते हैं। पांच सौ या हज़ार वर्ष पूर्व आप अपने आपको इतना सुरक्षित नहीं समझते थे ! बताइये, समाज में हिंसा और अव्यवस्था बढ़ रही है या घट रही है ? पहले आपके शहरों में गली-गली वेश्यायें कोठों पर शोभायमान थीं ? वेश्या रखना बड़प्पन का चिन्ह समझा जाता था। आज आपकी म्युनिसपैल्टियां या तो वेश्याओं को अपनी सीमा में रहने देने की आज्ञा ही नहीं देती और देती भी हैं तो उन्हें शहर के कूड़े की तरह बटोर कर अलग कर देती हैं। हमारे पूर्वज जुआ खेलना बड़प्पन समझते थे। एक आदमी दूसरे का घर-बार सम्पत्ति, राज-पाट जीत कर, दूसरे की स्त्री तक को जीत कर हारे हुये व्यक्ति को जंगलों में हांक देता था। समाज भी जीतने वाले का उन चीज़ों पर अधिकार स्वीकार कर लेता था। आज जुआ खेलिये तो कानूनी न जेल जाना पड़ेगा। इसे समाज का पतन कहियेगा······?"

राष्ट्रीय जी ने उन्हें टोक दिया—"आपको अपनी संस्कृति को गाली

देने में जाने क्या सुख मिलता है ? हमारे पूर्वजों की अचार और नैतिकता इतनी ऊँची थी कि इस देश में लोग अपने घरों में ताला भी नहीं लगाते थे और यह बात विदेशी यात्रियों तक ने स्वीकार की है।"

वैज्ञानिक बोल उठे—"ताला नहीं लगाते थे ? ताला बनाना नहीं जानते होंगे तो ताला लगाते भी न होंगे ! परन्तु चोरी-डाका तो उस समय साधारण सी बात थी। एक राजा उठकर अश्वमेध यज्ञ करके दूसरे राजाओं को लूट लेता था। एक राजा दूसरे राजा की बहू-बेटियों को छीन लाता था और ऐसे राजा प्रतापी और यशस्वी माने जाते थे।" आज का समाज यह कभी सहन नहीं कर सकता।

"यह मुसलमानों के राज में"……राष्ट्रीय कहना ही चाहते थे कि इतिहासज्ञ चिल्ला पड़े:—

"मुसलमानों के राज में भी और महाभारत के समय में भी ! खैर, जाने दीजिये, उस रामराजी नैतिकता में राजा के लिये एक नैतिकता थी और सर्वसाधारण के लिये दूसरी। हां, मनुस्मृति तो पढ़ी ही होगी आपने ? उसमें चोरी के लिये, व्यभिचार के लिये परन्तु बहुविवाह के लिये नहीं,—पशुओं से व्यभिचार के लिये भी सजायें बतायी गई हैं। यह अपराध होते नहीं थे तो इनके लिये सज़ा तजवीज करने की जरूरत क्या थी ? उस समय चोरी करने वाले के लिये दण्ड था, हाथ काट लेना। आज समाज चोरों को एक स्थान पर बंद करके उन्हें सुधरने का अवसर देना चाहता है। कौन समाज ज्यादा हिंसक समझा जाय ?……आज हमारे समाज का नैतिक आदर्श उदार और ऊंचा हो गया है, परस्पर विश्वास बढ़ गया है, हिंसा बहुत कम हो गई है क्योंकि भौतिक उन्नति ने हमारे रहन सहन का स्तर पहले से ऊंचाकर दिया है। मनुष्य-समाज का आचार विचार उसके भौतिक विकास पर ही निर्भर करता है। मनुष्य-समाज पतन की ओर नहीं, विकास और उन्नति की ओर जा रहा है। आज समाज में आर्थिक संकट के कारण हम जीवन को कठिन और संघर्ष-मय पा रहे हैं परन्तु यदि हम संघर्ष से इस संकट को दूर कर लेते हैं तो हम समाजवाद की सर्वोन्मुखी समाजिक समृद्धि के युग में पहुँच जायंगे। आप रूस की ही अवस्था देखिये……"

"आपका तो वो हाल है"—राष्ट्रीय हंस कर बोले—"अनाज खाये घर का, गीत गाये जंग का !"....जब देखो रूस चीन की बात ! अपनी भी बात कहिये ?"

उन की ही भांति ऊंचे स्वर में कामरेड ने उत्तर दिया—"आप ही फ़र्माइये, आपके किस गुण का गीत गायें ? क्या इस बात का कि देश में अन्न संकट बढ़ता ही जा रहा है ? क्या इस बात का कि कपड़ा नहीं मिलता, मकान नहीं मिलता और जनता पर दमन बढ़ता जा रहा है ? रूस आज संसार भर के साम्राज्यवाद के सामने सीना ठोक कर खड़ा है ? उसने जितनी योजनायें बनायो समय से पहले पूरी करके रख दीं; और बिना किसी की सहायता के ! आपने जितनी योजनायें बनाईं, एक भी पूरी नहीं कर पाये और दुनिया के सामने खीसें निकाल दीं ! चीन को पूंजीशाही से स्वतंत्र हुये छः मास नहीं हुये और वहां सदा बना रहने वाला दुर्भिक्ष मिटने लगा ! आप स्वतंत्र हुये तो देश में दुर्भिक्ष पड़ने लगा। चीन आपकी तरह अमेरिका की जूती चाटने नहीं गया ! यह है मजदूर राज की नैतिकता और नैतिक बल ! रामराज की नैतिकता यह है कि हम भूखों मर रहे हैं और आपके लिये नेहरु और मुंशी कहे जा रहे हैं, घबराओ नहीं, देश में सब कुछ है, दुर्भिक्ष नहीं है ! अरे भाई, तुम्हारे लिये सब कुछ है, दुर्भिक्ष नहीं है। हमारे लिये तो कुछ नहीं दुर्भिक्ष ही है। रामराज में राजा के लिये कभी दुर्भिक्ष नहीं होता, प्रजा के लिये ही होता है। तिस पर आप यह भी चाहते हैं कि हम आपके गुण गायें ?"

"रूस का आदर्श आप हमारे सामने रखना चाहते हैं ?"—क्षुब्ध-स्वर में साहित्यिक जी ने विरोध किया—"रूस की उस बर्बर पशुता पूर्ण व्यवस्था का आदर्श, जिसने मनुष्य के व्यक्तित्व का गला घोंट कर उसे एक मशीन बना दिया है, जहां कोई व्यक्ति स्वतंत्रता से अपने विचार नहीं प्रकट कर सकता, जहां मनुष्य स्वतंत्र विचार नहीं रख सकता, अपने जीवन का स्वतंत्र ढंग निश्चित नहीं कर सकता आप हमें उस विदेशी संस्कृति का कैदी बना देना चाहते हैं ? वहाँ लोगों को कोड़े लगते हैं ! भारत के स्वतंत्र उन्मुक्त प्राण अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता छोड़कर ऐसी दासता कभी स्वीकार नहीं कर सकते !"

"आप व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बात करते हैं ? कौन है स्वतंत्र आप के देश में ? क्या आज बम्बई में भत्ता छीन लिया जाने के कारण हड़-ताल पर डटे, भूख से मरते २,२५००० मज़दूर ? क्या इसी सप्ताह इन्दौर में गोलियां खाने वाले १५००० मजदूर; या ६ अगस्त के दिन गवालियर गोली-काण्ड में मारे जाने वाले सात विद्यार्थी ?❀ आपके अपने शहर में कपड़ा मिल के मज़दूर जो डेढ़ मास से मज़दूरी की कमी के कारण हड़ताल पर थे और अब निराश होकर भूखे पेट ही काम करने के लिये विवश हो गये क्या व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र हैं ? क्या २० ००० राजनैतिक बन्दी जो आज जेल में सड़ रहे हैं, क्या वे सब सरकारी नौकर जिनकी छटनी हो रही है और कल बच्चों के भूखे मरने की आशंका से जिनका दिल डूबा जा रहा है, क्या करोड़ों बेज़मीन के किसान व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र ? महात्मा जी, व्यक्तिगत स्वतंत्रता है आपके बिड़ला, टाटा, सिंहानिया को और उनके दलालों को ! व्यक्तिगत स्वतंत्रता है मिल मालिक को, उसकी मिल में मज़दूरी करने वाले हज़ारों मज़दूरों को नहीं ? जो रोटी के टुकड़े के लिये मोहताज हैं उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता केवल रामराजी नैतिकता है ! व्यक्तिगत स्वतंत्रता है समाजवादी रूस और चीन में जहाँ प्रजा सब साधनों की मालिक है, जहाँ प्रत्येक मेहनत करने वाले के लिये जीविका देना राज्य की जिम्मेवारी है, यह है मज़दूर राज की नैतिकता ! रूस में कोड़े लगते होंगे बिड़ला, टाटा, सिंहानियां के दस पाँच भाइयों को, जो पूंजीवाद और साम्राज्यशाही की दलाली में देश की जनता के साथ गद्दारी करते हैं। यहाँ रामराज में जनता को कोड़े लगते हैं। बम्बई में गिरफ्तार हो रहे हैं मज़दूर क्योंकि वे अपना भत्ता मांगते हैं। भत्ता न देने के लिये मिल-मालिक तो गिरफ्तार नहीं हो रहे ? तिस पर आप जनराज और प्रजाराज का ढोंग करते हैं ! यह है आपके रामराज की नैतिकता !"

क्लब का वातावरण अधिक गरम हो गया था इसलिये वैज्ञानिक शान्त स्वर में बोले—"आप पूंजीवादी समाचार पत्रों के प्रचार को निष्पक्ष समझ कर उनके रूस-विरोधी प्रचार का विश्वास कर लेते हैं।

❀ यह लेख अगस्त १९५० के तीसरे सप्ताह में लिखा गया है और केवल आस पास की घटनाओं का ही वर्णन इसमें हैं। ले०

परन्तु समाचार पत्र स्वयं पूंजी के बड़े-बड़े आयोजन हैं। इसके अति-रिक्त किसी भी समाचार पत्र को पलट कर देखिये उस में दो तिहाई काग़ज़ विज्ञापन से भरे होंगे? अखबार का पेट पलता है विज्ञापन से! विज्ञापन मजदूर नहीं पूंजीपति देता है। पूंजीपति मुनाफ़ा कमाने के लिये विज्ञापन देता है और इस काम की दलाली में अखबार को पैसा देता है। अखबार पूंजीवाद के विरुद्ध प्रचार करें तो अपना पेट काटें! क्या आप उनसे ऐसी आशा कर सकते हैं? अखबार न तो पूंजीपति को नाराज़ कर सकता है न सरकार को! क्यों कि सरकारी विज्ञापन आमदनी का बड़ा भारी साधन है? अभी आपको याद होगा 'क्रासरोड' में पटेल जी के सुपुत्र को रिफ्यूजी फंड का ५,००,०००० रुपया धांदली से दे दिया जाने का समाचार अगस्त के दूसरे सप्ताह में छपा था। परन्तु पूंजीवादी पत्र उस समाचार को पी गये! बात साफ़ है कि रामराज के लौह पुरुष को कोन नाराज़ करें?"

इतिहासज्ञ बोल उठे—"अभी आपने सुना होगा कि अमेरिका के प्रेज़ीडेण्ट रूज़वेल्ट साहब ने घोषणा की है कि वे कम्युनिज्म के विरुद्ध सत्य का प्रचार करने के लिये ८,६०,००००० डालर खच करेंगे। आजकल एक डालर लगभग चार रुपये का है। कम्युनिज्म और समाजवाद के निरंकुश दमन से तेंतीस वर्ष में रूस कितना तबाह हो गया और संसार कैसे तबाह हो जायगा यह बताने के लिये जनता के दिमाग़ पर अरबों रुपये का पर्दा डालने की जरूरत है। परन्तु रूस कितना तबाह हो गया यह इसी बात से स्पष्ट है कि रूज़वेल्ट साहब आज रूस से कांप रहे हैं। अमेरिका और दूसरे पूंजीवादी देशों की जनता रूस की जनता के उदाहरण से पूंजीवादी व्यवस्था के शोषण के बन्धन को तोड़ न फ़ेंके, इसलिये जनता को झूठ के पर्दे में रखना आवश्यक है। पूंजोपतियों की स्वार्थ रक्षा के लिये झूठ का पर्दा तैयार करने में रूज़वेल्ट अरबों रुपया खर्च करेंगे, वही काम रूज़वेल्ट के छोटे भाई बिड़ला, डालमिया के अखबार और उनकी दलाल कांग्रेस सरकार कर रही है। यह आपको मालूम ही है कि भारत को औद्योगिक सहायता देने के लिये अमेरिका ने हिन्द सर-कार के सामने इस देश में मजदूर आन्दोलन, और समाजवादी प्रचार को रोकने की और देश के उद्योग-धन्दों के राष्ट्रीयकरण की बात न

करने की शर्त रखी है। और हमारी सरकार ने अमेरिका की शर्तों को स्वीकार किया है। इसे आप क्या कहेंगे ? यह भारत की जनता की विचार स्वतंत्रता अमेरिका के हाथ बेच देना नहीं तो क्या है ? यह है रामराज की नैतिकता और सत्य-अहिंसा ?"

कामरेड तीखे स्वर में बोल उठे—"पूंजीवादी शोषकों के लिये इस समय सचाई का प्रचार ही सबसे भयंकर वस्तु है। वह जनता को केवल भूखे मरते रह कर चुप रहने की ही व्यक्तिगत स्वतंत्रता दे सकते हैं और अपने लिये शोषण का अधिकार बनाये रखना ही वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता समझते हैं। पूंजीवाद के इस अन्याय से बड़ी अनैतिकता और हिंसा क्या होगी ?"

कामरेड से आँखें बचा सर्वोदयी जी ने भद्रपुरुष और जिज्ञासू को सम्बोधन कर कहा—"अन्याय और हिंसा से अन्याय और हिंसा का उपाय नहीं हो सकता। संघर्षालु विदेशी संस्कृति के जाल में फंस कर हम अपना अस्तित्व क्यों खो बैठें ? हम अपने अहिंसात्मक भारतीय साम्यवाद पर ही क्यों न दृढ़ रहें ?

"भारतीय समाजवाद से आपका अभिप्राय ?"—कामरेड ने चौंक कर पूछा—"क्या रामराज्य का प्रपंच फीका पड़ जाने पर जनता को बह-काने के लिये कोई दूसरा प्रपंच सोचा जा रहा है ? यदि समाजवाद भारतीय और पश्चिमीय अलग-अलग हों तो अहिंसा भी अलग-अलग होनी चाहिये !"

इतिहासज्ञ फिर बोल उठे—"समाजवाद को विदेशीय पश्चिमी संस्कृति कह कर जनता को बहकाने की चेष्टा अनैतिक और असत्य है। भाई साहब, योरुप और अमेरिका के पूंजीपति अपने देश की जनता को समझाते हैं कि समाजवादी संस्कृति एशिया की बर्बर संस्कृति है, पश्चिम के काम की चीज नहीं। आप हमें समझाते हैं कि यह पश्चिम की संस्कृति है, भारत के लिये विदेशी है। देश में रेलें चलाते समय, मिलें बनाते समय, बिजली लगाते समय आपको यह बातें पश्चिम के उदाहरण से सीखते भय नहीं लगा। और यह पूंजीवाद का प्रजातंत्रवाद कौन मनु महाराज या वेदव्यास का अविष्कार है ? यह आपने पश्चिम से सीखा है

या नहीं ? यह पार्लियामेंटरी शासन पश्चिम की चीज है या नहीं ? यदि आप जीवन के लिये आवश्यक पश्चिम में विकास पाये पैदावार के साधनों को अपनायेंगे तो आप के समाज का संगठन भी औद्योगिक व्यवस्था के अनुकूल होगा ; वही कठिनाइयां आपके सामने भी आयेंगी। उन कठिनाइयों का हल भी आपको उनके अनुभव से सीखने में संकोच नहीं करना चाहिये..........."

सर्वोदयी जी ने असम्मति प्रकट करने लिये अपना सिर जोर से हिलाया और बोले—"नहीं नहीं, हम अपनी आत्मा को पश्चिम के हाथ नहीं बेचेंगे ? अपनी संस्कृति और नैतिकता को खो कर अपने देश को सर्वनाश के गढ़े में नहीं गिरने देंगे। गीता में भगवान कृष्ण कह गये हैं कि मनुष्य को अपने ही धर्म में स्थित रहना चाहिये।"

कामरेड उत्तेजित हो कुछ कहना चाहते थे कि वैज्ञानिक ने उनका हाथ थाम कर उत्तर दिया—"सर्वोदयी जी, आप चाहते हैं इंगलैण्ड, अमेरिका अपनी संस्कृति और नैतिकता पर जमे रहें ? रूस और चीन अपनी संस्कृति और नैतिकता पर डटे रहें और हम लौट कर अपनी रामराजी संस्कृति अपना लें और तीनों संस्कृतियों में संघर्ष चलता रहे ?"

"नहीं नहीं" - सर्वोदयी जी ने उत्साह से उत्तर दिया —"हमारी सत्य और अहिंसा की संस्कृति तो संसार को शान्ति का मार्ग दिखायेगी। संसार को उसे स्वीकार करना ही होगा, तभी संसार का कल्याण होगा। आपको याद है, पोलैण्ड पर हिटलर का आक्रमण होने पर बापू ने संदेश दिया था कि पोलैण्ड को हिटलर का सामना शस्त्र-शक्ति से नहीं, अहिंसा से और अत्याचार सह कर करना चाहिये। पोलैण्ड ने बापू की बात नहीं मानी। परिणाम हुआ कि पोलैण्ड हार गया ! हमारी संस्कृति की सफलता निश्चित है।"

सर्वोदयी जी की बात से इतिहासज्ञ कुछ खीझ से गये और बोले—"मार्क्सवादी समाजवाद का विकास पश्चिम में होने के कारण वह हमारे लिये उपयोगी नहीं ? गांधीवाद का स्रोत क्या है ; यह भी आप को मालूम है ? गांधी जी संस्कृत तो जानते नहीं थे। गीता भी पढ़ते थे तो अंग्रेजी अनुवाद से। गांधी जी ने अपने आपको कभी मनु, व्यास,

रामकृष्ण का अनुयायी नहीं कहा। उन्हों ने अपनी सम्पूर्ण विचार-धारा टाल्सटाय, एमर्सन और थोरे से ली है उन्हीं को वे अपना गुरु मानते थे: यह बात उन्होंने स्वयं स्वीकार की है। गांधीवाद का मूल मंत्र है Resist not the evil 'हिंसा का प्रतिकार शक्ति से नहीं करना चाहिये' यह मंत्र गीता, वेद और आर्य स्मृतियों का नहीं, बाइबिल का है। शूद्रक ने तपस्या के अधिकार का दावा किया था तो राम ने सत्याग्रह से उसका हृदय परिवर्तन नहीं किया तलवार से उसका सिर काट डाला। कौरवों ने पाण्डवों का राज छीना लिया तो भगवान कृष्ण ने युधिष्ठिर और अर्जुन को सत्याग्रह आन्दोलन करने की राय न देकर कुरुक्षेत्र में युद्ध करने की ही राय दी। सत्याग्रह का ऐतिहासिक उदाहरण आपको मिलता है रोम के अत्याचारी राजाओं के मुकाबले ईसाई साधुओं के व्यवहार में। अब आप बताइये, गांधीवाद को भारतीय संस्कृति कैसे माना जा सकता है ?"

वैज्ञानिक ऊब कर उठ खड़े हुये और हाथ जोड़ कर बोले—"महाराज, यदि उन्नत संस्कृति और नैतिकता की कसौटी ही जीवन में सफलता है तो संसार का लगभग चौथाई भाग बहुत ही थोड़े समय में समाजवादी संस्कृति और नैतिकता को अपना चुका है। रामराजी, राजसत्तात्मक तथा सम्पत्ति के अधिकार पर आश्रित संस्कृति और नैतिकता संसार से सिमिटती ही जा रही है। यह हमारी बुद्धि पर निर्भर करता है कि हम किस संस्कृति का साथ देते हैं। समाजवाद आपको पतलून पहन कर पश्चिमी संस्कृति अपनाने के लिये बाध्य नहीं करता। वह तो समाज की एक आर्थिक प्रणाली मात्र है जो समाज के सब व्यक्तियों के लिये जीवन के समान अवसर और जनवादी नैतिकता का अनुमोदन करती है............"

सब लोग उठ गये परन्तु सर्वोदयी जी ने बैठे-बैठे ही अपनी बात अंत में कह दी—"इसका निर्णय तो अंत में एक दिन भगवान ही अवतार लेकर और संसार से पाप का नाश कर करेंगे !"

५

रामराज का प्रजातंत्र और मज़दूर तानाशाही

चक्कर क्लब में सृष्टि और मनुष्य-समाज के इतिहास का चर्चा होता है, वादों और सिद्धान्तों की कभी उधेड़बुन बहुत होती है परन्तु इस लिये नहीं कि चक्कर क्लब के सदस्य समाज के सर्वसाधारण लोगों को अनुभव होने वाली कठिनाइयों और उनकी समस्याओं से मुक्त हैं। जैसे शारीरिक परिश्रम का अवसर न आने से शरीर शिथिल अनुभव होने पर बड़े लोग टेनिस या पोलो खेल कर शरीर को थकाना और शरीर से कुछ पसीना बहा देना आवश्यक समझते हैं, वैसे ही कोई समस्या या चिन्ता न होने से कभी कभी-उनका दिमाग़ भी आलस्य की अंगड़ाइयां लेने लगता है। तब वे प्रायः राजनीति, आर्थिक विधान, आस्तिकता-नास्तिकता पर बहस भी करने लगते हैं। वह बहस बहुत उदार होती है, अर्थात बहस करने वाले उदाराशयों की बहस का उनके जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वे नितान्त तटस्थ हो कर या अपने व्यक्तिगत प्रश्न और स्वार्थ को परे रख कर बात करने का गर्व करते हैं।

चक्कर क्लब नित्य जीवन की समस्याओं से पिसे हुये लोगों का समुदाय है। इसलिये यहां अन्तरराष्ट्रीय राजनीति की बहस भी व्यक्तिगत स्वार्थ से जुड़ी रहती है और व्यक्तिगत समस्या का विवेचन राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय समस्या का आधार बन जाता है। ऐसा भी कभ नहीं होता कि व्यक्तिगत और घरेलू समस्या से झुंझला कर अपना दुख बटाने के लिये ही लोग यहां आ बैठते हैं।

उस दिन भद्र पुरुष कुछ ऐसी ही परिस्थिति में आये और अपने भतीजे को यूनिवर्सिटी में शिक्षा दिला सकने की सम्भावनाओं का चर्चा करने लगे। संक्षेप में उन्होंने बताया कि भतीजा उनका बहुत ही प्रतिभा-शाली और परिश्रमी है। मैट्रिक में अपने स्कूल में प्रथम आकर उसने वज़ीफ़ा भी पाया था। वह इंटर में भी ज़रूर प्रथम आता लेकिन उसे परीक्षा की तैयारी का समय ही नहीं मिला पिछले वर्ष भद्रपुरुष के भाई की अकाल मृत्यु हो जाने से लड़के के सिर पर घर का खर्च चलाने का बोझ भी आ पड़ा। भद्रपुरुष के भाई किसी कम्पनी में पचास रुपये माहवार पर मुंशी थे। लड़के की हिम्मत और योग्यता इतनी थी कि दो-दो ट्यूशनें पढ़ाकर भी वह पहले डिवीज़न में पास हो गया। प्रश्न था कि अब क्या किया जाय? यदि लड़का आगे नहीं पढ़ता तो केवल ४०-५० रुपये का मुंशी हो कर रह जायगा, या हाज़मे और ताकत की गोलियां बनाने वालों की गोलियां एक बेग में भर कर रेल गाड़ियों में बेचता फिरेगा। पिछले वर्षों के अत्याधिक परिश्रम से कमज़ोर वह पहले ही हो गया है। पेट खराब रहने लगा है। घर पर उसकी मां, एक छोटा भाई और एक बहिन भी है। ट्यूशन से आदमी कितना कमा सकता है? और फिर यूनिवर्सिटी की पढ़ाई का बोझ होगा! आदमी कितना परिश्रम कर सकता है!

अपने असामर्थ्य और भाग्य के प्रति क्रोध से भद्रपुरुष की आँखों में आँसू आ रहे थे। वे स्कूल में मास्टर हैं। महंगाई भत्ता मिला कर उन्हें एक सौ रुपया बन जाता है। एक ट्यूशन भी करते हैं। घर पर उनकी मां है, उनके बच्चों की मां है और बच्चे भगवान की दया से चालीस वर्ष की आयु में, पाँच तो हैं ही और आगे प्रसूता के लिये लम्बे-चौड़े खर्च की समस्या शीघ्र ही आने वाली है? खैर यह तो भगवान की इच्छा की बात है! इस ज़माने में जब आटा रुपये का दो सेर, दूध दो सेर भी नहीं और घी अढ़ाई ही छटांक; पर सौ सवा सौ कमाने वाले परिवार में घी खाता ही कौन है?····यह कहिये कि प्रति व्यक्ति १५) मासिक में क्या निर्वाह चल सकता है? स्कूल मास्टर की सफ़ेद-पोशी की मर्यादा अलग! वे अपने भतीजे की क्या सहायता कर सकते हैं?

और न करें तो कैसे ? लड़के का जीवन मिट्टी में मिल जाने दें ? लड़के को अवसर मिले तो वह क्या नहीं बन सकता ?

भद्रपुरुष के दुख से द्रवित होकर पहले सर्वोदयी जी ही बोले। हाथ से छत की ओर संकेत कर उन्होंने कहा—"वही सब करने वाला है ?"

कामरेड बोल उठे, उन्होंने भी हाथ से छत की ओर संकेत कर कहा—"उसी ने तो लड़के के बाप को उठा लिया और भद्रपुरुष बेचारे के घर को १५) मासिक प्रति व्यक्ति दे रहा है।"

"हां और क्या ?"—अधीर स्वर में भद्रपुरुष ने स्वीकार किया।

सर्वोदयी जी ने भद्रपुरुष को ढांढ़स बंधाया—"घबराइये नहीं, उसी पर विश्वास रखिये। 'वह' पत्थर में बन्द कीड़े का भी पेट भरता है। जाने किसके मन में 'वह' दया उत्पन्न करदे ? और लड़के की शिक्षा का प्रबन्ध कर दे ? या लड़के को अच्छी ट्यूशनें ही मिल जायँ !"

कामरेड फिर बोले—"क्यों साहब, लड़का किसी के आगे हाथ क्यों पसारे ?"

मौजी कुछ आदमियों के नाम गिनाने लगे जिनके यहाँ ट्यूशनें मिल सकने की सम्भावना हो सकती थी परन्तु मार्क्सवादी बोले—"यह भी तो सोचिये कि मनुष्य के लिये उचित परिश्रम की एक सीमा होती है। उससे अधिक परीश्रम करने का अर्थ होता है, जीवन की शक्ति को शीघ्र समाप्त कर देना। दिये में एक बत्ती जलाने और तीन बत्ती जला देने से कुछ फरक पड़ेगा या नहीं ?····होगा क्या ? आमदनी पर्याप्त न होने से लड़का उचित पौष्टिक भोजन तो पा नहीं सकेगा और मेहनत करेगा मुनासिब से बहुत ज्यादा ! आप दिये में बहुत कम तेल डाल कर तीन चार बत्तियाँ जला दीजिये और पेंदी में एक छेद भी कर दीजिये तो क्या होगा ?

भद्रपुरुष को वैज्ञानिक ने सम्बोधन किया—"भाई साहब, बुरा न मानियेगा, जैसे आपके भतीजे की समस्या वैसी मेरे लड़के की और हम जैसे सभी लोगों की सन्तान की समस्या और उनका भाग्य ! होगा यह कि लड़का जान की बाज़ी लगा कर एम० ए० पास कर लेगा। एम० ए० हो जायगा और जान दे देगा। तब तक उसे दिक हो जाय, दमा

हो जाय, अत्यधिक परिश्रम के बोझ से आंतड़ियां निर्बल होकर सदा के लिये पेट का रोगी हो जाय ! अरे भाई"—उनका स्वर ऊंचा हो गया—"पूंजीवादी समाज और सरकार नहीं चाहती कि हमारे तुम्हारे बच्चे पढ़ें ? क्या जरूरत है इस समाज और इसकी सरकार को कि हमारे तुम्हारे बच्चे बहुत अधिक पढ़ लिख कर लायक हों ? खुद बड़े आदमियों की औलाद के लिये ही काफ़ी नौकरियां और पेशे नहीं, न कारोबार में ही गुन्जाइश है। समाज को अफ़सर और मालिक नहीं चाहिये ? अफ़सर और मालिक बहुत हैं। ज़रूरत है, नौकरों और मज़दूरों की। अफ़सर और मालिक बढ़ेंगे तो क्या होगा ? अफ़सरों की रोज़ी और मालिकों का मुनाफ़ा कम होगा। वे लोग ऐसा क्यों होने दें। मज़दूर और नौकर बढ़ेंगे तो क्या होगा ? बेकार नौकर और मज़दूर कम तनख्वाह और मज़दूरी पर काम करने के लिये मिलेंगे। इसमें है मालिक और अफ़सर लोगों का फ़ायदा। इसलिये पूंजीवादी समाज और उसकी सरकार शिक्षा की व्यवस्था ऐसी करती है कि बड़े आदमियों के लड़कों के लिये, शिक्षा का खूब अच्छा प्रबन्ध हो जाय ? तुम लोगों के लड़कों को शिक्षा से दूर रखने के लिये सीधा तरीका है कि शिक्षा का खर्च बढ़ाते जाइये और साथ-साथ यह भी कहते जाइये कि जनता और देश की सन्तान के लिये शिक्षा का प्रबन्ध है, शिक्षा का दरवाजा सब के लिये समान रूप से खुला है। लेकिन शिक्षा का दरवाजा इतनी ऊंचाई पर बनाइये कि रुपये की लम्बी सीढ़ी लगा कर वहाँ तक चढ़ने का अवसर केवल बड़े आदमियों के लड़के ही पा सकें।"

"आप समाज और सरकार को गाली दे रहे हैं"—सर्वोदयी जी ने पूछा—"क्या आप समाज नहीं हैं, क्या जनता की सरकार आपकी सरकार नहीं है ?"

"हम समाज का अंग अवश्य हैं परन्तु हम पराधीन हैं"—कामरेड ने उत्तर दिया—"हम लोग केवल पूंजीपती श्रेणी के उपयोग के लिये हैं। सरकार जनता की नहीं है। सरकार तो समझती है कि जनता सरकार की है। जनता का कर्त्तव्य है कि खेती पर लगान दे, जो चीज़ खरीदे उस पर कर भरे, सरकार का खर्च चलाये, सरकार का हुक्म

मानें, सरकार की जय पुकारें। परन्तु जनता के लिये कोई अवसर नहीं, पूंजीपति अमीरों के लिये सब कुछ है। साधनहीन गरीब मजदूरों, भूमिहीन या कम भूमि वाले किसानों के लिये कुछ नहीं। केवल एक भद्रपुरुष जी का ही भतीजा तो शिक्षा न पा सकने के कारण जीवन में सब अवसर नहीं खो रहा! कितने हजारों लाखों व्यक्ति ऐसे हैं जो शिक्षा नहीं पा सकते? कितने बीमार हैं जो दवाई नहीं पा सकते? कितने बेकार हैं जो मजदूरी नहीं पा सकते? लोगों ने सहायता कर दी और भद्रपुरुष जी का भतीजा इन्टर पास कर गया। सहायता मांगने वाले करोड़ों और दे सकने वाले दस-पाँच हों तो देश का काम कैसे चलेगा? लाखों तो साक्षर हो सकने का भी अवसर नहीं पा सकते......"

बगल में बैठे कांग्रेसी जी ने कामरेड के मुख के सामने हाथ कर उन्हें चुप करा दिया और बोल उठे—"यह आप गलत बात कह रहे हैं। कांग्रेस सरकार ने प्राइमरी-शिक्षा मुफ्त कर दी है और अनिवार्य भी। अब अगर कोई न पढ़े तो सरकार का कसूर?"

अब की बार भद्रपुरुष ही अपना दुख भूल कर बोल उठे—"हाँ, शिक्षा अनिवार्य कर दी है; इसीलिये सरकार स्कूल मास्टरों को चपरासी से भी कम तनखाह देती है? और सुनिये, हमारे पड़ोस में चुन्नी बेवा रहती है। उसका नौ बरस का लड़का है। दोनों रेल की लाइन पर कोयला चुनने जाते हैं तो दिन भर में बारह आने कमा लाते हैं। लड़के को अनिवार्य शिक्षा पाने के लिये भेज दें तो छः आना ही रोज रह जाय! तो क्या अपने और लड़के के पेट में घास भरेगी? साहब सुना है, जो लोग अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजेंगे उन्हें सरकार सज़ा देगी......"

कामरेड उबल उठे—"सरकार सजा ही देगी, चुन्नी को रोटी कमाने के लिये मजदूरी नहीं देगी। यह अच्छा रहा, मजदूरी देना रह पूंजीपति के हाथ और सज़ा देना सरकार के हाथ? भैया पूंजीपति श्रेणी का राज है। पूंजीपति की औलाद के लिये सब सुविधा है। मज़दूर श्रेणी का राज होगा तो मजदूर की संतान के लिये भी सब सुविधायें हो जायंगी, जैसे रूस में हैं?"

कामरेड को चुप कराने के लिये अपना हाथ भगवान बुद्ध की शान्ति

मुद्रा में उठाकर सर्वोदयी जी ने समझाया—"प्रत्येक बात में श्रेणी संघर्ष और हिंसा की बात करने और सरकार को गाली देने से क्या लाभ ? इससे अपना ही मन अशान्त होता है। आप मनुष्य के ऊपर, भगवान के न्याय और विधान को क्यों भूल जाते हैं ? मनुष्य के कर्मफल की बात क्यों भूल जाते हैं ? हमारे पिछले जन्म के भी तो कर्म हैं ?······"

अब की बार वैज्ञानिक ने अपने स्थान से आगे बढ़ सर्वोदयी जी के मुंह के आगे हाथ कर उन्हें चुप करा दिया और सहसा भद्रपुरुष को सम्बोधन कर बैठे—"बताइये, आपके किस कर्म का फल है कि आपका भतीजा शिक्षा पाने का अवसर नहीं पा रहा; आप के सम्पूर्ण परिवार को अपर्याप्त भोजन से क्यों निर्वाह करना पड़ता ?"

"भाई मुझे क्या मालूम ?······मैं तो नहीं जानता !"—भद्रपुरुष ने विवशता में हाथ फैला कर उत्तर दिया—"जाने कब कौन जन्म हुआ था और किसने क्या कर्म किये होंगे ?"

"क्यों नहीं मालूम ?"—अपना स्वर तेज़ कर वैज्ञानिक ने प्रश्न किया—"भगवान ने आपको बताया नहीं ?"

"नहीं तो"—भद्रपुरुष और भी सकपका गये—"भगवान कब किस को बताते हैं ?······हमें तो किसी ने नहीं बताया।"

अब वैज्ञानिक ने सर्वोदयी जी की ओर देखा—"लीजिये भगवन, अगर यह मास्टर साहब किसी लड़के का अपराध बताये बिना चार चांटे लगा दें तो कोहराम मच जायगा और आपके दयालु-न्यायकारी भगवान किसी को भी कारण बताये बिना, लाखों आदमियों को तपेदिक कर देते हैं, भूखा रखते हैं, अनपढ़ रखते हैं और क्या-क्या नहीं करते ?"

बीच में मार्क्सवादी बोल उठे—'ठीक है, ठीक है, और क्योंकि आजकल सत्य-अहिंसा के पुजारियों और ईश्वरभक्तों* की सरकार का

---

* सन १९४८ में सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवारों को वोट न देकर कांग्रेस के ही उम्मीदवारों को वोट देने के लिये जनता से अपील करते हुये श्री० गोविन्द बल्लभ पंत ने जनता को समझाया था कि आप सोशलिस्टों पर कैसे भरोसा कर सकते हैं ? सोशलिस्ट तो भगवान को भी नहीं मानते !

अवसर चाहते हैं। यह अन्याय होता है पूंजीवादी समाज की व्यवस्था के दोष से। पीड़ित लोग इस अन्याय के विरुद्ध आवाज़ न उठायें इसलिये आप इस अन्याय को भगवान की इच्छा बता देते हैं। यदि भगवान है तो उनकी इच्छा से अब रूस की समाजवादी शासन-व्यवस्था में लोग पिछले जन्म के कर्म फल के कारण साधनहीन और अवसर हीन अवस्था में जन्म नहीं लेते। पूंजीपतियों के स्वार्थ को भगवान का न्याय बता देना बड़ा भारी पाप है महात्मा जी"—दोनों हाथ जोड़ विनीत स्वर में मार्क्सवादी ने उत्तर दिया—"रूस में अब पूंजीवादी भगवान का विधान नहीं चलता। रूस में पैदा होने वाले सब लोगों के लिये समान सुविधा और अवसर रहता है। वहां पूंजीपति भगवान का राज नहीं मजदूर का राज है।"

मार्क्सवादी की बात का प्रभाव न जमने देने के लिये कांग्रसी भाई बोल उठे—"आपके विचार में भद्रपुरुष जी के भतीजे की शिक्षा की समस्या हल करने के लिये उपाय यह है कि श्रेणी संघर्ष चलाकर पहले इस देश में मज़दूर तानाशाही कायम हो जाय? तब तक वह लड़का प्रतीक्षा करता रहे?"

कांग्रेसी भाई के इस मज़ाक से कामरेड निरुत्तर नहीं हुये और दृढ़ निश्चय का घूंसा उठाकर और आंखों में गहरे असंतोष की चिनगारी चमका कर बोले—"आज आप चाहें तो साधनहीन श्रेणी के प्रयत्नों का मज़ाक उड़ा सकते हैं। लेकिन मज़दूर भद्रपुरुष के भतीजे को बैठ कर मदूज़र शासन कायम हो जाने की प्रतीक्षा करने की सलाह नहीं देते। मज़दूर भद्रपुरुष के भतीजे को समझाना चाहते हैं यह तुम्हारी व्यक्तिगत समस्या नहीं, इसके लिए तुम सम्पूर्ण साधनहीन श्रेणी के साथ मिल कर अपने प्रति अन्याय करने वाली व्यवस्था का अन्त करने की चेष्टा करो।"

कांग्रेसी जी ने परेशान हो जाने के भाव से हाथ फैला कर और सहानुभूति से भद्रपुरुष की ओर देख कर कहा—"लीजिये साहब, लड़के की जिन्दगी बनने-बिगाड़ने का प्रश्न तो आज है और यह समस्या के फैसले की तारीख डाल रहे हैं मज़दूर तानाशाही कायम होने के बाद?"—

कामरेड को निरुत्तर कर देने के विश्वास में कांग्रेसी जोर से हंस दिये।

इतिहासज्ञ ने एक सिगरेट सुलगाया था, लम्बा कश खींच कर वे बोले—"भाई साहब एक बात है, आप प्रभावशाली आदमी हैं। सम्भव है आपकी सिफारिश से भद्रपुरुष के भतीजे का कुछ प्रबन्ध हो जाये। सुना है, बिड़ला जी, डालमिया जी और टाटा साहब गरीब लोगों को सहायतार्थ वजीफे भी देते हैं। परन्तु ऐसे कितने आदमियों की समस्या हल हो सकेगी? क्यों दें वे वजीफे? और कोई मांगे क्यों? प्रश्न है कि समाज में सभी के लिये शिक्षा और जीविका पाने का समान अवसर क्यों न हो? यदि ऐसा नहीं होता तो यह भद्रपुरुष के भतीजे पर ही नहीं बल्कि सर्वसाधारण पर अन्याय है। ऐसे प्रश्नों को व्यक्तिगत रूप में नहीं सामाजिक रूप में सोचा जाना चाहिये।"

इनके मुंह की बात मार्क्सवादी ने ले ली—"भद्रपुरुष के भतीजे की समस्या उनकी व्यक्तिगत परिस्थितियों के कारण नहीं है........"

जिज्ञासु टोक बैठे—"इनकी व्यक्तिगत परिस्थिति के कारण नहीं है तो किस कारण है?"

"पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा पैदा हो गयी आर्थिक परिस्थिति के कारण?"—मार्क्सवादी ने ज़ोर से उत्तर दिया—"इस समस्या का हल व्यक्तिगत रूप से ढूंढ़ने का अर्थ है, इस व्यवस्था में गुंजाइशें ढूंढ़ना, इसको सह्य बनाना? सम्पूर्ण शोषित सर्वसाधारण को भुला देने और एक व्यक्ति, जो असंतोष प्रकट कर रहा है, उसे किसी तरह टुकड़ा डाल कर चुप करा देने की कोशिश करना। शहर में बीमारी फैलने पर आप एक एक आदमी का इलाज करते जायं और बीमारी के कारण को शहर से दूर न करें, यह तो अक्लमन्दी नहीं है। ऐसे ही अपनी शक्ति व्यक्तिगत रूप से किसी एक आदमी की आर्थिक उलझन सुलझाने में न लगा कर पूंजीवादी व्यवस्था को बदलने का यत्न करना चाहिये। पूंजीवादी व्यवस्था और मौजूदा सरकार की शासन-व्यवस्था में इस समस्या का हल हो ही नहीं सकता। यह समस्यायें इस व्यवस्था का ही तो परिणाम हैं। जिन समस्याओं में पूंजीपति श्रेणी का भी स्वार्थ है उन्हें तो पूंजी-

पति समाज सामाजिक रूप से हल करना चाहता है; उदाहरणतः नगर में बीमारी फैलना, चोरी डकैती होना आदि। जिन समस्याओं अर्थात बेकारी और अवसर की कमी आदि में केवल गरीबों का मरन है, उन्हें आप व्यक्तिगत प्रश्न बना कर छोड़ देते हैं ? यह सरकार का पूंजीवादी दृष्टिकोण नहीं तो क्या है ?"

कांग्रेसी जी खिन्न स्वर में बोले—"आप हर बात में सरकार पर लाकर तान तोड़ते हैं। कांग्रेसी सरकार बने अभी जुम्मा-जुम्मा सात दिन तो हुये नहीं। आपने कांग्रेसी सरकार को कुछ करने का अवसर ही कब दिया है ? रूस की आप बड़ी तारीफ़ करते हैं परन्तु उन्हें जमे बत्तीस बरस भी तो हो गये ?"

"कांग्रेस सरकार को भी तो भाई साहब तीन बरस हो ही गये ? तीन बरस में इतना तो पता चल गया कि कांग्रेस सरकार चल किस राह पर रही है।"— वैज्ञानिक बोले।

"कांग्रेस सरकार बिलकुल जनता का राज कायम करने की राह पर चल रही है, देखिये पंचायत राज !"—कांग्रेसी जी ने उत्तर दिया।

मार्क्सवादी बोले—"पहली बात तो यह है कि पंचायत राज चल कहीं नहीं रहा, वह है दिल बहलावे का तमाशा, आप यह बताइये कि पंचायतें यह निश्चय कर सकती हैं कि लगान कितना हो ? कौन-कौन टैक्स लगाये जायं ? जमीन का बटवारा कैसे हो ? पैदावार कितनी हो और कैसे हो ? मजदूरी कितनी हो ? क्या खेतों को और कारखानों को पंचायत के अधिकार में लिया जा सकता है ?

"पंचायत कुछ भी नहीं कर सकती। बस यह फैसला कर सकती है कि औरत भगाने वाले को कितने जूते लगें। पूंजीपति सरकार ने सम्पत्ति की रक्षा के लिये जो नियम बनाये हैं, पंचायत उनकी चौकसी कर सकती है। आर्थिक व्यवस्था को तो केन्द्र और प्रान्त की गद्दी पर कब्जा करके पूंजीपति अपने हाथ में सुरक्षित रखे हैं। आप पंचायत में बैठ कर हुक्का घुमाया कीजिये।"

"आप कांग्रेसी सरकार को पूंजीवादी सरकार कैसे कह सकते हैं ? कांग्रेस तो पूंजीपतियों की संस्था न है, न थी, क्या कांग्रेस में केवल

पूंजीपति ही रहे हैं ? अरे भाई पूंजीपति एक रहा तो हज़ार सर्वसाधारण लोग रहे। कांग्रेसी सरकार को हम पूंजीवादी सरकार कैसे मान लें ?"—कांग्रेसी जी ने प्रश्न किया।

"यह बात ठीक है"—इतिहासज्ञ ने स्वीकार किया—"कि कांग्रेस में सर्वसाधारण की अपेक्षा पूँजीपतियों की संख्या कम थी परन्तु कांग्रेस की नीति तो पूंजीपति श्रेणी के दृष्टिकोण से ही निश्चत होती रही। जनता की शक्ति का उपयोग कांग्रेस ने पूंजीपतियों का स्वार्थ सिद्ध करने के लिये किया। लड़ी जनता और शासन का अधिकार सम्भाल लिया पूंजीपति श्रेणी ने।"

सर्वोदयी जी विरोध में सिर हिलाकर बोले—"यह कोई कैसे मान सकता है ? कांग्रेस तो देश के गरीबों की ही प्रतिनिधि है और विशेष कर बापू के नेतृत्व में चलने वाली कांग्रेस तो पूंजीपतियों के हाथ की चीज़ हो ही नहीं सकती थी ? बापू तो दरिद्र-नारायण के पुजारी थे।"

"गांधी जी के प्रभाव और गांधीवाद की राह से ही तो कांग्रेस पूंजीपतियों की स्वार्थ साधना का साधन बनती रही।" मार्क्सवादी उत्तेजित होकर बोले—"गांधी जी ने ही सदा ही पूंजीपति श्रेणी के हित की रक्षा के लिये इस देश के राजनैतिक स्वतंत्रता के आन्दोलन को क्राँति के मार्ग से हटाकर इसे ब्रिटिश पूंजीवाद से समझौते का ही आन्दोलन बनाये रखा। गांधी जी ने जब भी क्राँति की सम्भावना सामने देखी, आंदोलन को स्थगित कर दिया। गांधी जी के सामने सदा ही यह आशंका बनी रही कि ब्रिटिश पूंजीवादी शासन को उखाड़ फेंकने वाली क्राँति कहीं भारत में पूंजीवाद को भी निमूल न कर दे ? पूंजीवादी व्यवस्था पर आक्रमण ही गांधी जी की दृष्टि में सबसे बड़ी हिंसा थी। मालिक के अधिकार की प्रतिष्ठा ही गांधी जी के रामराज्य का आदर्श था।"

"इससे बड़ा झूठ और क्या हो सकता है ?"—सर्वोदयी जी चिल्ला उठे—"इससे बड़ी कृतघ्नता और क्या होगी ? दुनियाँ जानती है कि बापू ने ही इस देश को स्वतंत्र किया। कांग्रेस आन्दोलन ने ही इस देश की राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त की। यह कामरेड जो युद्ध के ज़माने में ब्रिटिश सरकार की बगल में जा घुसे थे, आज देश की स्वतंत्रता के समर्थक बन

रहे हैं और आप पर ब्रिटिश सरकार के सहायक होने का आरोप लगा रहे हैं ? इतने बड़े असत्य को सहन करना सम्भव नहीं ?" - सर्वोदयी जी के नेत्र लाल हो गये । उत्तेजना में उनके हाथ इतने वेग से चल रहे थे कि यदि कोई जीव उनकी पहुँच में आ जाता तो उसकी हिंसा की पूर्ण सम्भावना थी ।

जिज्ञासु और भद्रपुरुष ने बीच बचाव किया—"सुनिये, सुनिये ! कामरेड निश्चय ही गम्भीर आरोप कर रहे हैं और उसका उत्तर आप गम्भीरता से दीजिये ! गांधीवाद ने ब्रिटिश साम्राज्यशाही का हृदय परिवर्तन कर रक्तपात रहित क्रान्ति से भारत का स्वाराज्य ले लिया है तो आप कामरेडों का भी हृदय परिवर्तन नहीं कर सकते ? यह अपना और अपनी श्रेणी का भला ही तो चाहते हैं । इन्हें यदि मार्क्स और रूस की बात समझ में आ सकती है तो आपकी बात भी समझ सकेंगे । आप इन्हें केवल हिंसा का ही पुजारी क्यों मान बैठे हैं ?"

"जनाब, हम तो प्रमाण देकर बात करते हैं"—मार्क्सवादी ने सीना फैला कर चुनौती दी—"गांधी जी ने १९२२, फरवरी के "यंग इण्डिया" में अपने लेख "Doctrine of Sword" में स्वयम स्वीकार किया है कि स्वराज्य प्राप्ति के लिये हमने यदि तलवार का मार्ग लिया होता तो हमें शायद उतनी कुर्बानियां न करनी पड़तीं जितनी कि अहिंसा के मार्ग पर चलकर हमें ब्रिटिश दमन के सामने देनी पड़ीं ।" याद रखिये, यह बात सन् २२ की है अर्थात् गांधी जी सीधी क्रान्ति से सन २२ में ही स्वराज्य की आशा करते थे । फिर सन ४७ तक हमें गुलामी में क्यों सड़ाया गया ? उन्होंने अपने लेख My Sorrows "यंग इण्डिया" फरवरी २३, १९२२ में स्पष्ट लिखा है कि "भारत की स्वतंत्रता से अधिक महत्व मेरे लिये अपनी मुक्ति का है । मैं पहले हिन्दू हूँ और देशभक्त बाद में ?" इन बातों का आप क्या अभिप्राय समझते हैं ।... हमने निर्णय आप ही पर छोड़ा ?"—चारों ओर बैठे लोगों को सम्बोधन कर उन्होंने उत्तर मांगा ।

शेष लोगों को विचार में पड़ चुप रह गये देख सर्वोदयी जी ने वितृष्णा के स्वर में उत्तर दिया—"इसका क्या मतलब हुआ ? इसका

मतलब तो यह है कि बापू इस देश की भौतिक स्वतंत्रता की अपेक्षा अपनी और इस देश की आध्यात्मिक उन्नति को अधिक महत्व देते थे !"

"यह तो ठीक है"—भद्रपुरुष ने समर्थन किया।

"परन्तु आध्यात्मिक स्वतंत्रता का देश की राजनैतिक स्वतंत्रता से क्या सम्बंध ? कांग्रेस न तो आध्यात्मिक संस्था थी, न धार्मिक !"—जिज्ञासु ने प्रश्न किया—"आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वास का प्रश्न व्यक्तिगत या साम्प्रदायिक होना चाहिये। देश भर के आध्यात्मिक और धार्मिक विश्वास तो न एक जैसे हैं न थे।"

"और फिर गांधी जी ने यह भी तो कहा है कि मैं हिन्दू पहले हूँ" —जिज्ञासू को सुझाने के लिये वैज्ञानिक बोले—"क्या देश की सम्पूर्ण जनता राजनैतिक और आर्थिक आजादी से अधिक महत्व हिन्दु सम्प्रदाय की मुक्ति की कल्पना को दे सकती थी ?"

"यह तो आप मानियेगा" —मार्क्सवादी बोले—"गांधी जी ने देश के स्वाभाविक गति से चलते राजनैतिक आन्दोलन में पूंजीवाद की रक्षा करने वाली सत्य-अहिंसा की धारणा की अड़चनें डाल दीं, वर्ना भारत की जनता संघर्ष और शक्ति प्रयोग के स्वाभाविक मार्ग पर चल कर विदेशी सरकार के शोषण से बहुत पहले ही मुक्ति पा चुकी होती और उस मुक्ति का रूप भी दूसरा ही होता। उस मुक्ति में देश के भाग्य-विधान का अधिकार भारत की पूंजोपति श्रेणी के हाथ में न सिमिट कर जनता के हाथ में होता। भारत स्वतंत्र किस बात में होगया है ? आर्थिक और राजनैतिक रूप से आज भी हमारा भाग्य अंग्रेज और अमेरिकन साम्राज्यवादियों के नियंत्रण में है। हमारा व्यापार और अन्तरराष्ट्रीय सम्बंध उनकी ही इच्छा से, उनके लाभ के विचार से चलते हैं। यह बात गलत है कि कांग्रेस ने अंग्रेजों से राज छीन लिया है। वास्तविकता यह है कि अंग्रेज साम्राज्य दूसरे महायुद्ध के परिणाम में निर्बल हो जाने के कारण भारत पर सैनिक शक्ति से शासन करने योग्य नहीं रहा। अंग्रेजों ने भारतीय जनता के असंतोष को भी खूब समझ लिया। अब भारत के शोषण का उपाय उनके हाथ में यही है कि भारत की पूंजोपति शोषक श्रेणी की सांझेदारी से काम चलायें। पहले अंग्रेजी शासन के शोषण में

भारतीय पूंजीपति श्रेणी भी पिसती थी, उनका भाग बहुत कम रहता था। अब देश की पूंजीपति श्रेणी का भाग बढ़ गया है। इनके स्वार्थ अमरीकन और अंग्रेज शोषकों के साथ सांझे हो गये हैं। यही है हमारा स्वराज जो इस देश की पूंजीपति श्रेणी ने गांधी जी के नेतृत्व में ब्रिटेन से समझौता करके पाया है। इसी के लिये हम देश के स्वतंत्रता आन्दोलन को पूंजीवादी वैधानिकता में बांधकर पंगु बना देने वाले गांधी जी और कांग्रेस के प्रति कृतज्ञ हो सकते हैं।"

कुछ देर पहले शुद्ध साहित्यक भी आगये थे। विचार की सूक्ष्मता के लिये माथे पर त्योरियां डाल उन्होंने प्रश्न किया—"आपने कहा, बापू ने अपने पूंजीवादी सत्य-अहिंसा के लिये देश के हित के प्रति विश्वासघात किया और देश की पूंजीपति श्रेणी और ब्रिटेन के स्वार्थ की रक्षा की। पूंजीवादी सत्य-अहिंसा से आपका क्या अभिप्राय? क्या सत्य और अहिंसा भी पूंजीवादी और मार्क्सवादी अलग-अलग होगी?"

"निश्चय!"—हथेली पर दूसरे हाथ का घूंसा मारते हुये मार्क्सवादी ने उत्तर दिया—"सत्य-अहिंसा के सम्बन्ध में सभी लोगों की धारणा अपने हित, ज्ञान और विश्वास के आधार पर बनती है। और हमारा लक्ष्य, ज्ञान और विश्वास हमारी भौतिक परिस्थितियों के आधार पर होता है।"

'बस यही तो भौतिकवादी मार्क्सवादियों की सबसे बड़ी भूल है"—सर्वोदयी जी ने सुझाया—"मेरे भाई"—अपना हाथ फैला कर वे बोले—"तुम लोग तो दाल-रोटी और चाय सिगरेट मिल जाना ही स्वराज और देश की उन्नति समझते हो! बापू का उद्देश्य तो इतना संकीर्ण नहीं था। वह तो देश में सत्य-अहिंसा की स्थापना से आत्मिक शान्ति चाहते थे।"

"आखिर सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति का कुछ परिचय हम लोगों को भी तो हो"—वैज्ञानिक ने प्रश्न किया—"हमें भी मालूम हो कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद कैसी सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति हमें मिली है।"

मार्क्सवादी अपनी बात स्पष्ट करने के लिये पहले से ऊंचे स्वर में बोले—"अंग्रेज इस देश से सत्य, अहिंसा और आत्मिक-शान्ति की

गठड़ी बांध कर तो लिये नहीं जा रहे थे! वे तो इस देश को राजनैतिक पराधीनता में बांधकर इस देश की आर्थिक लूट अर्थात् भौतिक साधनों की ही लूट कर रहे थे। देश की जनता इस लूट को रोकना चाहती थी। जनता आत्मनिर्णय का अधिकार किस लिये मानती थी? अंग्रेज़ आप को मन्दिर, मसजिद में जाने से नहीं रोकता था, शीर्षासन करने में भी अड़चन नहीं डालता था, उपवास करने और "रघुपति राघव राजा-राम…" गाने से भी नहीं रोकता था! अंग्रेज़ी राज में गांधी जी की सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति को चोट किस तरह पहुँच रही थी…"

"क्यों विदेशी दासता से देश का पतन नहीं हो रहा था?"–कांग्रेसी भी में बोल उठे।

"और देसी दासता में क्या देशी उत्थान हो रहा है?"—कामरेड बोल उठे—"हम तो यह पूछते हैं कि देश यदि सशस्त्र क्रान्ति से कुछ जल्दी अंग्रेज़ों को भगा देता तो सत्य-अहिंसा और आत्मिक शान्ति को क्या हानि पहुंचती, उससे गाँधी जी की मुक्ति के मार्ग में क्या अड़चन आ जाती?"

"आप सशस्त्र क्रान्ति की बात करते हैं?…एक निशस्त्र देश सशस्त्र क्रान्ति कर ही कैसे सकता था"—सर्वोदयी जी बोले—"यह तो बापू का ही चमत्कार था कि इतने प्रबल साम्राज्य की शक्ति से एक निशस्त्र देश को स्वतंत्र करा लिया। आप के पास शस्त्र थे ही कहाँ?"

"शस्त्र नहीं थे इसलिये अहिंसा उचित थी या जनता की शक्ति का प्रयोग पाप है?"—वैज्ञानिक ने प्रश्न किया—"गांधी जी ने यह भी तो कहा था कि तलवार की राह से देश शायद कम कुर्बानियाँ करके ही स्वतंत्र हो जाता? इसका स्पष्ट अर्थ है कि गांधी जी देश में सशस्त्र क्रान्ति को असम्भव नहीं समझते थे। यह कहना कि गांधी जी ने देश को निशस्त्र देख कर ही हमें अहिंसा का पाठ पढ़ाया, उनके प्रति अन्याय है। वे अहिंसा को नीति नहीं, उद्देश्य मानने का ही उपदेश देते रहे। प्रश्न तो यह है कि सशस्त्र क्रान्ति को टालने के लिये देश को अधिक देर तक गुलाम रखने में गांधी जी ने देश की क्या भलाई देखी?"

"देश की आत्मा की रक्षा"—सर्वोदयी जी ने गर्दन उठा उत्तर दिया।

खिन्नता से सिर हिलाकर वैज्ञानिक बोले—"श्रीमान, आप तो पहेलियों में बात करते हैं।"

"देश की आत्मा की रक्षा से आप का मतलब है, पूंजीपति श्रेणी की सम्पत्ति और मुनाफ़ा कमाने के अधिकार की रक्षा"—मार्क्सवादी बोले—"गांधी जी सम्पत्ति पर स्वामी के अधिकार की रक्षा के न्याय में विश्वास करते थे। मालिक से सम्पत्ति का अधिकार छीना जाना उनकी दृष्टि में सबसे बड़ा अन्याय और हिंसा थी।"

सर्वोदयी जी टोक कर पूछ बैठे—"आप यह बताइये बापू अमीरों के सहायक और मित्र थे या दरिद्रों और गरीबों के ?"

"गांधी जी निश्चय ही मालिक श्रेणी के सहायक और रक्षक थे"—कामरेड ने ऊँचे स्वर में उत्तर दिया।

"इतने बड़े झूठ को भला कौन मान सकता है"—सर्वोदयी जी और शुद्ध साहित्यिक प्रायः एक साथ ही बोले—"बापू ने अपना जीवन ही दरिद्र नारायण की सेवा में अर्पण कर दिया। आप उन्हें मालिकों का समथक बता रहे हैं!"

"आप को याद नहीं—" इतिहासज्ञ ने प्रश्न किया—"जब यू० पी० के जमीन्दारों का डेपूटेशन जमीन्दारी उन्मूलन के सम्बन्ध में गांधी जी के पास गया था, गांधी जीने उन्हें क्या उत्तर दिया था ? गांधी जी ने उन्हें विश्वास दिलाया था,.......सम्पत्ति की मालिक श्रेणी से बिना उचित कारण के उनकी सम्पत्ति छानने का मैं कभी समर्थन नहीं कर सकता। आप लोग विश्वास रखिये, मैं अपना सम्पूर्ण प्रभाव और शक्ति श्रेणी संघर्ष को रोकने में लगा दूँगा और यदि कभी अन्यायपूर्ण तरीके से आप की सम्पत्ति छीनी जायगी तो मैं आप का साथ दूँगा।..."

कामरेड बोले—"परन्तु किसानों मजदूरों को गांधी जी ने कभी आश्वासन नहीं दिया कि जिस सम्पत्ति पर अधिकार होने से मालिक तुम्हारा शोषण करते हैं जनता और राष्ट्र के हित के लिये उस सम्पत्ति पर समाज का अधिकार करने के लिये यदि तुम सत्याग्रह करो तो मैं तुम्हारा साथ दूँगा। गांधी जी ने पूंजीवाद से किसान-मजदूर श्रेणी के स्वतंत्रता प्राप्त करने के संघर्ष मे सदा सर्वहारा श्रेणी के विरुद्ध पूंजीपति श्रेणी

का ही साथ दिया। शासक और शोषक श्रेणी के अधिकार की रक्षा के लिये बल प्रयोग और खून बहाना गांधी जी को कभी हिंसा नहीं जान पड़ी। जब कानपुर और अहमदाबाद में मज़दूरों ने अपनी माँगों के लिये हड़ताल की और हड़ताल में साथ न देने वाले मज़दूरों को साथ मिलाने के लिये मिलों के सामने लेट कर सत्याग्रह न किया तो गांधी जी ने इस काम को अनुचित बता दिया और मिलमालिकों के पुलिस बुला कर इन मज़दूरों पर लाठीचार्ज कराने को भी उचित बताया दिया। गांधी जी की अहिंसा का वास्तविक उद्देश्य तो सदा सम्पत्ति कमाने और उस पर स्वामित्व के अधिकार की रक्षा ही रहा है।"

"आप तो कह रहे थे"—जिज्ञासु ने याद दिलाया—"कि गांधी जी ने ब्रिटिश शासन से मुक्ति प्राप्त करने के भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन में अड़चनें डालीं और ब्रिटिश शासन को देश में देर तक कायम रहने में सहायता दी!"

"बेशक, गांधी जी ने दो तरह से भारतीय स्वतंत्रता को स्थगित किया"—इतिहासज्ञ बोले—"पहली बातः—आप याद कीजिये, १६२२ में बम्बई और चौरीचौरा में जन क्रान्ति जैसा रूप ले रही थी यदि उसे बढ़ने का अवसर दिया जाता तो क्या ब्रिटिश सरकार इसी प्रकार सिंहासन आरूढ़ बनी रहती?........"

"यह आप स्वप्न की बातें कर रहे हैं"–सर्वोदयी जी ने धमकाया—"देश तैयार कहाँ था। यदि हिंसा की वह लहर चल जाती तो जनता बरबाद हो जाती।"

"स्वप्न की बातें कर रहे हैं आप"—इतिहासज्ञ ने प्रत्युत्तर दिया—"गांधी जी ने वह आन्दोलन १२ फरवरी १६२२ को रोका था। जानते हैं आप ६ फरवरी को वायसराय ने लन्दन यह तार भेजा था, स्थिति बहुत ही गम्भीर और नाज़ुक है, हमें धोखे में नहीं रहना चाहिए!"* ऐसी

* Telegraphic Correspondence regarding the Situation in India Cmd. 1566, 1922.

स्थिति में आन्दोलन रोकना अंग्रेजों को पाँव जमाने का अवसर देना था या नहीं ? और स्पष्ट उदाहरण लीजिये, १६३० में क्या हुआ ? १६३० के आन्दोलन में जब पेशावर की जनता ने अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध विद्रोह किया, अंग्रेजों ने मुस्लिम जनता पर गोली चलाने के लिये हिन्दू गढ़वाली पल्टन को भेजा। इस गढ़वाली पल्टन ने अपने हिन्दुस्तानी मुसलमान भाइयों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया बल्कि कई सिपाहियों ने अपनी बन्दूकें जनता को सौंप दीं। पेशावर दस दिन के लिये अंग्रेज़ी शासन से स्वतंत्र हो गया।

"यदि गांधी जी और कांग्रेस ने इन गढ़वाली सिपाहियों का समर्थन कर, देश में अंग्रेज़ी राज कायम रखनेवाली हिन्दुस्तानी फौज को देश की आज़ादी के लिये जनता का साथ देने और विदेशी राज से लड़ने के लिये ललकारा होता तो क्या परिणाम होता ? पेशावर में पायी गयी नयी आज़ादी का जंग देश भर में फैल जाता और हम तीसरे महा युद्ध में अंग्रेज़ी दमन का शिकार न बने होते ! परन्तु गांधीजी ने इन सिपाहियों के देश की जनता का साथ देने की निन्दा की और अंगरेज़ सरकार के हुक्म से अपने भाइयों पर गोली चलाना सिपाहियों का धर्म बताया। उस समय गाँधी जी को अहिंसा का सबसे बड़ा धर्म और हिन्दू-मुस्लिम एकता भी भूल गयी। अहिंसा से बड़ा धर्म उन्हें जान पड़ा, सिपाही का मालिक की आज्ञा मानना। यह शोषण की नैतिकता की रक्षा के लिये सब कुछ कुर्बान कर देना नहीं तो क्या है ? अपनी स्वतंत्रता के लिये विद्रोह करने वाले अपने भाइयों से सिपाहियों की सहानुभूति गांधी जी को हिंसा जान पड़ी और स्वतंत्रता चाहनेवाली प्रजा पर गोली चलवाना धर्म और नैतिक जान पड़ा। खैर, इसे आप अंग्रेज़ी शासन कायम रखने में सहायता देना नहीं कहियेगा ?

"और सुनिये, उस समय देश में जो क्रान्तिकारी आन्दोलन अंगरेज़ी सरकार की व्यवस्था और प्रतिष्ठा की जड़ों में बम विस्फोट कर रहे थे, उनकी भी गांधी जी ने कांग्रेस के मंच से सदा निन्दा ही की और देश की जनता को ब्रिटिश शासन व्यवस्था और विधान के आगे सिर झुकाये रहकर अधिकारों की मांग करते रहने का उपदेश दिया। सन् १६४६

में जब बम्बई में समुद्री सिपाहियों ने ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध सशस्त्र बग़ावत की तब भी उन्होंने इसका विरोध किया और उनकी ओर से पटेल साहब अंग्रेज़ी साम्राज्यशाही की सहायता के लिये बग़ावत शान्त कराने पहुँचे। गांधीजी और कांग्रेस नेताशाही यह कभी नहीं चाहते थे कि सर्वसाधारण जनता देश के शासन का अधिकार अंग्रेज़ों से छीन ले! ऐसा होने से देश के शासन का अधिकार जनता के हाथ में चला जाता। गांधी जी और कांग्रेस की नीति यह थी कि देश की जनता के असंतोष का दबाव अंगरेज़ों पर डाला जाय और अंगरेज़ अपनी पूंजी-वादी व्यवस्था का बना-बनाया शासन इस देश की पूंजीपति श्रेणी को सौंप दें; हुआ भी यही! यहाँ तक कि १९४२ में भी जो कुछ विद्रोह अंग्रेज़ी साम्राज्यशाही के विरुद्ध हुआ, गांधी जी ने उसका भी विरोध ही किया। गांधी जी और कांग्रेस–हाईकमाण्ड ने १९४२ के विद्रोह की जिम्मेवारी अंगरेज़ों पर डाली और कहा—कि तुमने कांग्रेस के नेताओं को जेल में डाल कर जनता को बेलगाम कर दिया, तभी यह सब कुछ हुआ, वर्ना हम विद्रोह न होने देते। लेकिन आज भारत को आज़ादी दिलाने का सेहरा गांधी जी और कांग्रेस के सिर पर है!"

"आपने तो पूरी बात पर ही पानी फेर दिया"—खिन्न होकर भद्रपुरुष बोले—"आपका मतलब है, कांग्रेस और गांधी जी ने ब्रिटिश शासन को देश से हटाने के लिये कुछ नहीं किया?"

"यह हम नहीं कहते"—मार्क्सवादी बोले—"हम कहते हैं ..."

कांग्रेसी ने उन्हें क्रुद्ध स्वर में टोक दिया—"आप अब तक तो प्रमाण देते आये कि गांधी जी और कांग्रेस अंगरेज़ी सरकार के विरुद्ध विद्रोह का दमन करते आये हैं और आप यह भी नहीं कहते कि गांधी जी और कांग्रेस ने भारत से ब्रिटिश शासन हटाने का काम नहीं किया, तो आप कुछ भी नहीं कहते!"—अपने तर्क की प्रबलता प्रकट करने के लिए वे हो-होकर अट्टाहास कर उठे।

"हम जो कहना चाहते हैं, वह हमें ही कह लेने दीजिये"—मार्क्स-वादी ने विनय से प्रार्थना की—"हम यह कहना चाहते हैं कि गांधी जी और कांग्रेस के नेताओं ने, जो दोनों ही पूंजीपती श्रेणी के प्रतिनिधि

थे और पूंजीवादी न्याय और नैतिकता की धारणा में विश्वास रखते थे, ब्रिटिश पूंजीवादी साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध भारतीय क्रान्ति का विरोध किया। क्योंकि उन्हें आशंका थी कि ब्रिटिश शासन की पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध भारतीय क्रान्ति इस देश में पूंजीवादी व्यवस्था को ही समाप्त कर दे सकती है। गांधी जी और कांग्रेस के पूंजीवादी नेतृत्व के सामने १९१७ की समाजवादी रूसी क्रान्ति का उदाहरण था। रूस में क्रान्ति ज़ार के शोषक शासन के विरुद्ध हुई थी। क्रान्ति का नेतृत्व कम्युनिस्टों ने मजदूरों, किसानों और सिपाहियों के सहयोग से किया। परिणाम में शक्ति उनके हाथ गयी और वहां ज़ार-शाही के साथ पूंजीवादी और सामन्तशाही व्यवस्था का भी अंत हो कर जनता का राज होगया। गांधी जी ने अप्रैल १९४० के हरिजन में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया था कि —"मुझसे ऐसे संघर्ष में भाग लेने की आशा नहीं की जा सकती जिससे देश में अराज़कता और लाल-विध्वंस फैल जाये।" अर्थात् अंग्रेज़ी शासन टूट कर अराजकता फैल जाने की अपेक्षा वे अंग्रेज़ी शासन को ही बेहतर समझते थे। उनकी दृष्टि में अराजकता का अर्थ मालिक और पूंजीपति श्रेणी के मिल्कियत के अधिकार का न माना जाना ही था।

"गांधी जी और कांग्रेस के नेताओं ने ब्रिटिश पूंजीपति श्रेणी से शासन और शोषण का अधिकार अपने देश की पूंजीपति श्रेणी के हाथ में ले लेने के काम को समझौते के मार्ग से पूरा कर लिया है। गांधी जी और कांग्रेस ने शासन का अधिकार अपने हाथ में लेने के प्रयोजन से अगरेजों के विरुद्ध भारतीय जनता की शक्ति का प्रयोग तो किया परन्तु भारतीय किसान-मज़दूर जनता को शोषण से स्वतंत्र नहीं होने दिया। यह भारतीय जनता की आर्थिक स्वतंत्रता नहीं हुई; केवल ब्रिटिश पूंजीपति श्रेणी और भारतीय पूंजीपति श्रेणी में मुनाफ़ा कमाने के अवसर की हिस्सा बांट हो गयी।"

"गांधी जी और अंगरेज़ सरकार दोनों ही पूंजीवादी प्रणाली की नैतिकता और न्याय में विश्वास रखते थे। इसलिये गांधी जी ब्रिटिश पूंजीवादी शासन के विधान और क़ानून को अपनी रक्षा के लिये भी

आवश्यक समझते थे। इसीलिये वे संतोष से सदा वैधानिक और शान्तिपूर्ण आन्दोलन ही चलाते रहे। वैधानिक और शान्तिपूर्ण आन्दोलन को आप परस्पर हित के समझौते की मांग के अतिरिक्त और क्या कहेंगे? गांधी जी चाहते थे कि ब्रिटिश शासन व्यवस्था की बोतल का डाट ऐसे वैधानिक और शान्तिपूर्ण ढंग से खोला जाय कि उसमें बंद शोषण का अधिकार बोतल टूटने से बिखर न जाये और वह डाट भारतीय पूंजीपति श्रेणी के हाथ आजाय!"

"आपको असंतोष इस बात का है"—सर्वोदयी जी ने उलाहना दिया—"कि भारत से अंगरेजी शासन हटने के समय रक्तपात नहीं हुआ, गृह-युद्ध नहीं हुआ, आपको लूट का अवसर नहीं मिला।"

"नहीं, हमें असंतोष इस बात का नहीं कि रक्तपात नहीं हुआ"—कामरेड ने उत्तेजित न हो उत्तर दिया—"असंतोष इस बात का है कि सर्वसाधारण को कोई अधिकार नहीं मिला, अवसर नहीं मिला, उनकी अवस्था नहीं सुधरी; बल्कि खाने-पहरने को पहले से कम मिलता है और राजनैतिक-आर्थिक मांगों के लिये आन्दोलन की आजादी पहले से बहुत कम है"

"तो आप चाहते हैं कि एक ही दिन में सब कुछ हो जाय"—कांग्रेसी बोले—"आप सरकार को कुछ करने का अवसर दीजिये, सरकार को सहयोग दीजिये!"

"एक दिन में सब नहीं हो सकता, यह सभी जानते हैं परन्तु लोटे से गिरे पानी का बहाव तो देखा जा सकता है!"—वैज्ञानिक ने उत्तर दिया—"अब एक दिन नहीं, तीन बरस का अनभुव हमारे सामने है। सफलता-असफलता एक बात है, परन्तु नीयत तो दिखाई दे जाती है। कांग्रेस सरकार शिकायत करती है कि जनता सहयोग नहीं देती। जनता अपने कल्याण के काम में सहयोग न दे। यह कैसे हो सकता है? परन्तु सरकार जनता का सहयोग चाहती है उसे शोषण का शिकार बनाने के लिये। इस काम में जनता को भला क्या उत्साह हो? राष्ट्रीय सरकार ने जनता का दामन नहीं जनता की शोषक श्रेणी का दामन पकड़ा है। शासन का अवसर हाथ में आने से पहले कांग्रेस एलान करती थी कि पैदावार के

साधनों का राष्ट्रीयकरण किया जायगा। शासन हाथ में आने पर राष्ट्रीय-करण पहले पांच वर्ष के लिये टला, फिर दस बरस पर बात गई ; अब अनिश्चित काल के लिये ! सरकार को सहयोग वही देगा जिसका हित सरकार पूरा करेगी। सरकार पैदावार बढ़ाना चाहती है तो उसका तरीका यह नहीं हो सकता कि पैदावार के साधनों को मुनाफ़ाखोर मालिकों के हाथ में रहने दे। उसका उपाय तो यही हो सकता है कि इन साधनों का उपयोग राष्ट्र की जनता के हित के दृष्टिकोण से किया जाय। राष्ट्र और जनता के हित का उपाय मुनाफ़ाखोर अधिक अच्छी तरह कर सकता है या इन साधनों को अपनी शक्ति से चलाने वाली मजदूर श्रेणी ?"

कामरेड झुंझलाकर बोले—"पैदावार बढ़ाने से फायदा क्या अगर जनता उसे खरीद न सके ? पैदावार बढ़ाने का तो नाम सिर्फ मजदूर विरोधी नीति के बहाने के लिये है। जब दाम बढ़ते जायं और मजदूरी न बढ़े तो जनता पैदावार को खरीदेगी कैसे ? सभी जानते हैं कि आज-कल रुपये ज्यादा खर्च होते हैं और सौदा घर में कम आता है। सरकार तीन बरस से पैदावार बढ़ा रही है, जनता कि महँगाई बढ़ रही है और बढ़ रहा है टैक्स !"

"टैक्सों के बारे में एक बात आप देखिये"—वैज्ञानिक बोले —"युद्ध के जमाने में अंगरेजों को रुपया इकट्ठा करना था तो उन्होंने मुनाफ़े पर टैक्स जगाया था, यानि जो रुपया पूंजीपति की जेब में चला जाय उस पर टैक्स ! पूंजीपति यह टैक्स खरीददार जनता पर नहीं डाल सकता था ; मजबूर था। राष्ट्र का भला चाहने वाली सरकार आयी है तो मुनाफ़ों पर से, पूंजीपति की जेब पर से बड़े-बड़े टैक्स हट गये और खरीददार जनता पर लग गये। यह जनता का जीवन-स्तर ऊंचा करने का उपाय हो रहा है ?"

"यदि आप कुछ देर के लिये अपने मन से उद्योग धन्दे चलाने वालों के प्रति द्वेश और हिंसा दूर कर दें तो बात आप की समझ में आ सकती है"—गम्भीर बात कहने की भूमिका के रूप में कांग्रेसी जी बोले —"और यदि सरकार और पूंजीपतियों के विरुद्ध द्रोह फैलाना ही आपका उद्देश्य है तो बात दूसरी है।"

जिज्ञासु ने उत्सुकता से आगे बढ़ कर अनुरोध किया—"जरूर समझाइये साहब, समझना ही तो चाहते हैं !"

सब लोगों को समझने के लिये इच्छुक देखकर कांग्रेसी गम्भीरता से बोले—"आप देश का औद्योगीकरण चाहते हैं। औद्योगीकरण बिना पूंजी के नहीं हो सकता। इसलिये राष्ट्र-निर्माण के लिये पहला कदम देश में पूंजी इकठ्ठा करना होना चाहिये। इसीलिये सरकार पहले पूंजीपतियों को पूंजी इकठ्ठी करके देश में उद्योग-व्यवसाय बढ़ाने का अवसर दे रही है। देश में उद्योग-व्यवसाय बढ़ने पर ही जनता के जीवन का स्तर ऊंचा हो सकता है।……समझे आप ?"

मार्क्सवादी उत्तेजित हो गये—"आप हमें समझाना चाहते हैं कि राष्ट्रीय सरकार राष्ट्र के उद्योगीकरण के लिए देश के पूंजीपतियों को झांसा दे रही है। वास्तव में झांसा दिया जा रहा है जनता को ! राष्ट्र में उद्योग-धन्दे चलने के लिये पूंजी चाहिये ?"……"पूंजी होती क्या है ?"……एक गाँव में आप सड़क बनाना चाहते हैं। पूंजी नहीं है। फर्ज कीजिये गांव वाले अपने सांझे हित का खयाल कर सब लोग रोज़ दो घंटे मुफ्त काम कर देते हैं। सड़क बन जायगी। पूंजी हो गई न ! पूंजी तो परिश्रम की शक्ति ही है। पूंजीपति के पास पूंजी कहां से आती है ? मुनाफे के रूप में मजदूर के श्रम का हथियाया हुआ भाग ही तो उसकी पूंजी है ? वास्तव में तो पूंजीपति की पूंजी भी राष्ट्र या जनता की ही सम्पत्ति है। आप राष्ट्र और जनता की भलाई के लिए राष्ट्र की पूंजी पूंजीपति से लौटाने के बजाय और पूंजी यानि मुनाफ़े के रूप में जनता के श्रम का भाग उसके हाथ में दे देना चाहते हैं। राष्ट्र पर पूंजीपति के कब्जे को और बढ़ा देना चाहते हैं। इस देश के पूंजीपति को अन्तरराष्ट्रीय पूंजीवाद से गहरा नाता जोड़ कर इस देश को अमेरिका और इंगलैण्ड की पूंजीवादी व्यवस्था के साथ जकड़ देना चाहते हैं। जब मजदूर कहता है "संसार के मजदूरों एक हो" तो आप कहते हैं यह लोग अपने देश को विदेश का दास बना रहे हैं। जब नेहरू साहब देश को अंग्रेजों के कामनवेल्थ में फँसा देते है आप समझते हैं, राष्ट्र की विजय हो गयी। जब पूंजीपति देश को अन्तरराष्ट्रीय पूंजीवादी व्यवस्था में फंसाता है तो आप को देश का कल्याण जान पड़ता है ?"

"हम यह जानना चाहते हैं"—वैज्ञानिक बोल उठे—"देश में उद्योग-धन्दों का विस्तार कुछेक पूंजीपतियों के यत्न से, उनके मुनाफ़े के दृष्टि-कोण से जल्दी हो सकता है या सम्पूर्ण राष्ट्र के प्रयत्न से और राष्ट्र की आवश्यकता और हित का खयाल करने से ? पूंजीपति तो वही धन्दा करेगा जिसमें उसे तुरन्त मुनाफ़े की आशा होगी। पूंजीपति अमेरिका से कपड़ा बनाने की मशीन खरीदेगा। ऐसी मशीन को बनाने वाली मशीन नहीं खरीदेगा......"

"नहीं नहीं"—कामरेड बोले—"आप यह क्यों नहीं सोचते कि अमेरिका और इंगलैंड, जो स्वयम् मुनाफ़े की खोज में हैं, आप को उद्योगीकरण में सहायता क्यों देने लगे ? वे तो जितनी देर तक हो सकेगा, आप को बिछड़ा हुआ ही रखना चाहेंगे ? शोषकों से आशा करना कि वे आप को अपने बन्धन से छूटने योग्य बनायेंगे, अपने आपको धोखा देना है। क्या आप समझते हैं उनका हृदय परिवर्तन हो जायगा ? अलबत्ता अमेरिका के सहयोग से इस देश का पूंजीपति अपनी पूंजी और देश की व्ययस्था पर अपना कब्जा बढ़ा लेगा, सर्वसाधारण जनता का भला न हो सकेगा ? पूंजीपति के फायदे को ही राष्ट्र का फायदा बताना ः तो बात दूसरी है।

"भाई साहब, हम दूसरों के उदाहरण से क्यों न अपनी समस्या सुलझायें ?" —इतिहासज्ञ ने प्रश्न किया—"यह तो संसार का अनुभव है। कि व्यक्तिगत स्वामित्व में चलने वाले धन्दों से पैदावार कभी उतनी अधिक नहीं हो सकती जितनी कि राष्ट्रीय स्वामित्व और प्रबन्ध में चलने वाले धन्दों से हो सकती है ! इंगलैण्ड तो पूंजीवादी देश है। वहाँ के पूंजीपति अपना बस चलते कभी अपना अधिकार छोड़ कर अपने धन्दों को राष्ट्र के हाथ में देने के लिये तैयार नहीं थे। परन्तु पिछले महायुद्ध के समय जब अपनी जान बचाने के लिये पैदावार को बढ़ाना जरूरी था, उन्होंने युद्ध का सामान तैयार करने के सब कारखाने और दूसरे भी कई धन्दे जिनका सम्बन्ध युद्ध से था, राष्ट्र के अधिकार में कर लिए ! क्या हमारे लिए जरूरी है कि जिस तरीके को दूसरे लोग गलत समझ चुके हैं, उन्हें जरूर दोहरायें और सीधा तरीका सामने होने पर भी उसे न अप-

जायें ? हमारा देश अन्न की कमी से मर रहा है ! आप के सामने अमेरिका का ही उदाहरण है कि बड़े परिमाण में खेती करने से खर्च कम और पैदावार अधिक होती है। परन्तु आप भूमि पर छोटे-छोटे किसानों के स्वामित्व का महत्व अधिक समझते हैं इसलिए भूमि का राष्टीयकरण करके उस पर बड़े परिमाण में सांझी खेती नहीं कराना चाहते ! आप रूस का ही उदाहरण देखिये ! क्रान्ति से पहले जब रूस पंजीवादी व्यवस्था के ढंग पर चल रहा था। वहाँ जनता का ८० प्रतिशत भाग कृषि प्रधान भारत की तरह खेती ही किया करता था और अन्न कष्ट भी वहां सदा ही बना रहता था। समाजवादी ढंग पर पैदावार के राष्ट्रीयकरण के बाद से आप ही जानते हैं कि वहां अन्न की पैदावार कितनी बढ़ गई है कि वह दूसरे देशों को अन्न दे रहा है। अन्न के अतिरिक्त दूसरी ही चीजों की भी हालत देख लीजिये ! कहां तो रूस योरुप में सबसे पिछड़ा हुआ गिना जाता था और आज अमेरिका और ब्रिटेन की मिली हुई शक्ति भी उसके भय से कांप रही है। रूस में पैदावार की शक्ति कहां से आ गई ? यह रूस की भूमि और आकाश का जगह का जादू नहीं, समाजवादी व्यवस्था और मेहनत करने वालों के राज की शक्ति है। युद्ध के बाद से अमेरिका-इंगलैण्ड एक ओर बेकारी से परेशान हैं दूसरी ओर महंगाई से ! रूस में बेकारी बिलकुल नहीं, बेकारी की सम्भावना ही नहीं ! कीमतें वहां लगातार घट रही हैं। कारण स्पष्ट है कि वहां पैदावार मुनाफ़े के लिये नहीं, जनता के उपयोग के लिये होती है ?"

इतिहासज्ञ के लम्बे व्याख्यान के उत्तर में कांग्रेसी जी फिर बोले—"परन्तु देश के औद्योगीकरण के लिये पूंजी और उद्योग-धन्दों के साधन तो चाहिये। हमारे सामने अमेरिका, इंगलैण्ड और जापन के औद्योगिक विश्वास के भी तो उदाहरण हैं। हम समाजवाद को कब बुरा कहते हैं ? परन्तु पहले देश का औद्योगीकरण तो हो जाय उसके बाद राष्ट्रीयकरण भी हो जायगा। क्यों साहब !"—उन्होंने शुद्ध-साहित्यिक, सर्वोदयी जी तथा दूसरे लोगों के समर्थन की आशा में पूछा और उन लोगों ने—"बिलकुल ठीक है"—कह कर उनका समर्थन कर भी दिया।

इतिहासज्ञ तिलमिला उठे—"यह इतिहास को उलटने की चेष्टा

है महाराज ! आप इंगलैण्ड, अमेरिका और जापान के ढंग पर अपना औद्योगिक विकास करना चाहते हैं ?"–कांग्रेसी जी को हामी भरते देख वे बोले—"ठीक है, उन लोगों ने पहले भाप के इंजन का अविश्कार किया, पहले वे अपनी बुनाई की मशीनें खच्चरों से चलवाया करते थे और लकड़ी के जहाज़ बनाते थे ! पहले उनकी डाक देश भर में घोड़ों पर चला करती थी ! आप भी वही सब कीजियेगा ? आपको उनकी नकल नहीं करना, उनके उदाहरण से सीखना है। आप उनसे पूर्ण विकसित यंत्र बनाना सीखेंगे और अविश्कार करेंगे तो उससे अच्छे यंत्र बनाने का। ऐसे ही आर्थिक व्यवस्था में भी जो ठोकरें वे खा चुके हैं, उनकी नकल नहीं करेंगे ? आपके देश में जिस समय औद्योगीकरण हो रहा है, उस समय यंत्रों अर्थात पैदावार के साधनों का उपयोग संसार भर में सामाजिक और सामूहिक ढंग से होना आरम्भ हो चुका है। इसलिये यह आवश्यक नहीं कि आप ब्रिटेन और अमेरिका की नक़ल में इन साधनों को पहले पूंजीपति की व्यक्तिगत सम्पत्ति बनायें और बाद में उनका राष्ट्रीयकरण करें ? क्या ज़रूरत है कि देश को भयंकर आर्थिक संकटों में से, लाखों लोगों की बेकारी की हालत से, जनता के भूखे रहने और पैदावार को जलाने की हालत से गुज़रें ? अगर आप वास्तव में राष्ट्रीयकरण चाहते हैं तो औद्योगिक विकास का बोझ पहले ग़रीब पूंजीपति के कंधों पर डालना और फिर उसका राष्ट्रीयकरण कर देना पूंजीपति के साथ अन्याय और देश की शक्ति का अपव्यय है। क्यों न हम रूस के उदाहरण से लाभ उठायें, जो ग़लतियां रूस ने की हैं, उनसे भी बचें, पैदावार के साधनों की जिम्मेदारी राष्ट्र और समाज को देकर उधोग धन्दों में परिश्रम करने वालों को ही देश का औद्योगीकरण करने दें ?"

"आप चाहते हैं सरकार सब मिलें और पैदावार के साधन उठाकर मज़दूरों को सौंप दें ?"—कांग्रेसी जी ने प्रश्न किया।

"मज़दूर उसे कहते हैं जो पैदावार के लिये मेहनत करे, मुनाफ़ा न खाये !....राष्ट्र है ही क्या ? राष्ट्र का रुपये में १६१ पाई से भी अधिक भाग मज़दूर और किसान ही है।"—वैज्ञानिक बोले—"उनके कल्याण के बजाय आपको राष्ट्र के गिने चुने मुनाफ़ाखोरों के रूठ जाने का भय है ?"

"आप चाहते हैं श्रेणी संघर्ष हो, हिंसा हो, और रक्तपात हो"—सर्वोदयी जी क्षुब्ध स्वर में बोले—"और फिर मजदूरों की तानाशाही हो! क्या यह दमन नहीं होगा ? मजदूरों का दमन और शोषण अन्याय है तो मजदूरों की तानाशाही, पूंजीपतियों का शोषण और दमन भी अन्याय है।"

वैज्ञानिक जोर से हंस दिये और बोले—"सर्वोदयी जी इस समय अनुभव के जगत की बात नहीं, आध्यात्मिक कल्पना की बात कर रहे हैं! आपको पूंजीपति का शोषण होने का भय है ? मजदूरों का शोषण तो इसलिये होता है या हो सकता है कि वे अपने श्रम से पैदावार करते हैं। उनके श्रम का पूरा फल उन्हें न मिलना उनका शोषण है। मजदूर पूंजीपति के बंधन से छूट न जायें, या अपने श्रम का अधिक भाग अपने पास न रख लें, इसलिये उनका दमन किया जाता है। सर्वोदयी जी, आप बताइये कि पूंजीपति का शोषण और दमन मजदूर तानाशाही में क्यों कर हो सकेगा जरा समझाइये तो!"

"वाह क्यों"—शुद्ध साहित्यिक ने उत्तर दिया—"जब आप पूंजीपति की सम्पत्ति, उसकी मिल, कारखाना छीन लेंगे तो यह उसका शोषण नहीं है ?"

"पूंजीपति की मिल राष्ट्र के अधिकार में ले लेने का यह मतलब नहीं है श्रीमान कि वह मिल मजदूरों की ही मिल्कियत हो जायगी और पूंजीपति की मिल्कियत नहीं रहेगी"—वैज्ञानिक ने अपनी बात समझाई—"वह मिल तो राष्ट्र और समाज की सांझी सम्पत्ति होगी। क्या पूंजीपति समाज या-राष्ट्र का अंग नहीं है ? अलबत्ता वह अकेला ही मालिक न रहेगा, श्रम से पैदावार करने वाले सब लोग मालिक हो जायंगे। यदि पूंजीपति भी उस मिल में काम करेगा तो वह भी समाज का अंग होने के नाते सम्पूर्ण सामाजिक सम्पत्ति का सांझीदार होगा। यदि पूंजीपति श्रम नहीं करना चाहता, केवल दूसरों का ही श्रम खाना चाहता है, तो आप ही बताइये, आपकी अहिंसा में उसके लिये कौन नाम और स्थान है ? मार्क्सवाद या कम्युनिज्म पूंजीपति श्रेणी का शोषण नहीं करना चाहता। वह तो शोषण के अवसर और कारणों (श्रेणी विभाजन) को

ही मिटा देना चहाता है। शोषक श्रेणी को समाप्त कर देने का मतलब पूंजीपतियों के गले काट देना नहीं, उनके हाथ से शोषण का अवसर लेकर उंन्हें श्रम से पैदावार करने वाले बना देना है। केवल उनका हृदय परिवर्तन ही नहीं, उनका कर्म भी परिवर्तन कर देना है। और शहद तो मधु मक्खी से ही लिया जा सकता है, बर्रों से तो लिया नहीं जा सकता। जो श्रम करता नहीं, उसका शोषण किया कैसे जायगा? कम्यु-निज्म तो मेहनत करने वालों का शोषण समाप्त करना चाहता है। मनुष्य-मात्र को जीविका के लिये श्रम करने का और अपने श्रम का पूरा फल पाने का समान अवसर देना चाहता है।"

"तो फिर आप मज़दूरों के निरंकुश-राज या मजदूरों की डिक्टेटर-शिप की मांग क्यों करते हैं।"—जिज्ञासु ने प्रश्न किया—"आखिर समाज मजदूरों की तानाशाही क्यों सहे? किसी भी श्रेणी की तानाशाही अन्याय है।"

"भाई यही तो हम भी कह रहे हैं"—सर्वोदयी जी ने समर्थन किया—श्रेणी संघर्ष हो क्यों, वह तो हिंसा की वृत्ति का परिणाम है और उससे समाज में हिंसा ही फैलेगी? हमारा आदर्श तो रामराज्य की सत्य-अहिंसा है जिसमें जब को समान अधिकार हो।"

"हमारा आदर्श रामराज की नहीं मेहनत करने वालों की सत्य-अहिंसा है"- -कामरेड ने मुक्का उठाकर एलान किया—"जिसमें सबको समान अवसर हो। जिसमें श्रम का आदर हो, शासन और शोषण का नहीं!"

इतिहासज्ञ के माथे पर प्रश्न चिन्ह बन गया—"रामराज्य, की सत्य-अहिंसा? आप राज सत्ता के युग का रामराज्य चाहते हैं? जिसका वर्णन बाल्मीकि ने रामायण और महाभारत में व्यास ने किया है? जिसमें राजा या भूमिपति ही सब कुछ था। प्रजा को, चाहे वह जिस स्थिति की हो, शासनके सम्बन्ध में बोलने का अधिकार न था। राजा का पुत्र ही राजा होता था। भूमिपति श्रेणी ही समाज की स्वामी थी। श्रम करने वालों और कारोबार करने वाले सब अनादर की दृष्टि से देखे जाते थे...."

"क्या कह रहे हैं आप!"—सर्वोदयी जी ने चेतावनी दी।

"ठीक ही कह रहा हूँ"—इतिहासज्ञ कहते गये—"उस समम राजसभा

अगर होती थी तो राज के सम्बन्धियों, उसके वंश के लोगों और मुंह लगों की मण्डली ही होती थी। भूमिपतियों की श्रेणी के उस शासनकाल में वश्य को भी शासन व्यवस्था में कोई अधिकार नहीं था। कपड़ा बुनने वाला, लोहे, लकड़ी, चमड़े का काम करने वाले, किसी भी प्रकार की मेहनत करने वाले, कर्मकार, मजूरे सब अनादर की दृष्टि से देखे जाते थे, समाज में उनका स्थान नीचा था। परिश्रम के सब काम जन्मगत और वंशगत होने से मेहनत करने वालों के लिये अनादर की वही परम्परा आज भी चली आ रही है। रामराज की सत्य-अहिंसा में श्रम का आदर नहीं था, स्वामित्व के अधिकार से श्रम का फल छीन लेने के अधिकार का ही आदर था। ब्राह्मण और क्षत्रिय का आदर इस लिये था कि ब्राह्मण व्यवस्था के बनाने के अधिकार से और क्षत्रिय शस्त्र के बल से, भूमि के मालिक बनकर श्रम किये बिना भोग करते थे। भूमिपति श्रेणी के एक-छत्र राज में व्यापार का भी आदर न था "बनिये-बक्काल" का नाम ही याद किया जाता था। सौदा बेचकर पेट पालने वाले का और धन पर सूद लेने वाले का भी निरादर ही था। किसी को घी बेचने वाला और किसी को अन्न बेचने वाला कह कर गाली दी जाती थी ......"

राष्ट्रीय जी ने टोक दिया—"यह तो भाई साहब इसलिये था कि देश सम्पन्न था, घर-घर में सब कुछ था। बेचने खरीदने की जरूरत ही क्या थी?"

इतिहासज्ञ कुछ झुंझला उठे—"आप बार-बार बेतुकी बात ही कहेंगे? देश सम्पन्न था तो क्या श्रम के बिना पैदावार हो जाती थी? सम्पन्न होने पर क्या श्रम का निरादर होना चाहिये? कभी कोई समाज पादर्थों के विनिमय के बिना चल सकता है? यदि घर-घर में जूता बनता और लोहा पीटा जाता था तो इन कामों को करने वाली जाती का निरादर क्यों होता? आप कल्पना कर सकते हैं कि प्रत्येक घर में सभी काम हो जाते होंगे? आप यही कल्पना कर सकते हैं कि जिस घराने में तीन-चार सौ गुलाम रहते होंगे वही परिवार अपनी जरूरत की सब चीजें स्वयम् बनवा लेता होगा। या कल्पना कर सकते हैं कि एक गांव के ठाकुर या राजवंश या गुरु-वंश के लिये सब काम प्रजा से करा लिये जाते होंगे। ऐसे युग

और व्यवस्था में व्यापार का भी आदर नहीं हो सकता था क्योंकि व्यापार की न तो अधिक आवश्यकता थी और न व्यापार के लिये पदार्थों की पर्याप्त पैदावार! केवल स्थानीय तौर पर पदार्थों का विनिमय हो जाता होगा। ऐसी व्यवस्था को केवल भूमिपति श्रेणी का निरंकुश शासन कहा जा सकता है। समाज में आदर शासक श्रेणी का ही होता है और उसी की नैतिकता और व्यवस्था की मानता होती है। रामराज ऐसी ही व्यवस्था थी।

"अब पैदावार का साधन मुख्यतः भूमि नहीं उद्योग-धन्दे हो गये हैं तो उद्योगपतियों का आदर है। आज आप चाहे जितने बड़े ब्राह्मण या ठाकुर हों, चाहे राजा या गवर्नर हों आप कपड़े बुनने की मिल के मालिक को, चमड़े का काम करने वाली मिल के मालिक को या लोहे का सामान बनाने वाली मिल के मालिक को, जुलाहा, चमार और लोहार कह कर अपने सामने जमीन पर बैठाने का साहस नहीं कर सकते! सूद खाने वाले बैंक को सूदखोर कहकर दुत्कार नहीं सकते! क्योंकि यह पूंजीपति व्यवसायी श्रेणी का राज है। आज के व्यवसायी का यह सामर्थ्य है कि बड़े से बड़े राजा को खरीद सकता है! आज इंगलैण्ड और जर्मनी में लड़ाई होगी या नहीं, अमेरिका रूस पर हमला करेगा या नहीं और हिन्दुस्तान पाकिस्तान में लड़ाई होगी या समझौता, यह बात राजा लोग और भूमिपति नहीं निश्चय करते बल्कि पूंजीपतियों का अन्तर्राष्ट्रीय गुट्ट अपने प्रतिनिधियों द्वारा यह सब निश्चय करता है। यह पूंजीपति श्रेणी का निरंकुश राज है जिसे गांधी जी और कांग्रेस इस ज़माने में रामराज का नाम देना चाहते हैं।

"शासन सदा निरंकुश ही होता है चाहे जिस श्रेणी का हो! प्रजा की स्वतंत्रता का अर्थ केवल शासन व्यवस्था के अनुसार चलने का अवसर होता है। कोई भी शासन व्यवस्था अपने आपको पलट देने की स्वतंत्रता प्रजा को नहीं दे सकती। सत्य, अहिंसा और प्रेम अपनी शासन व्यवस्था को निरंकुश रूप से लागू करना ही है। समाज में श्रेणियां पहले भी थीं आज भी हैं। श्रेणी संघर्ष तब भी था आज भी है। आप समान अधिकार, मालिक मजदूर के हित के समझौते और श्रेणी-मंत्री की बात कहकर इस संघर्ष पर और मज़दूर श्रेणी के शोषण पर पर्दा डालना चाहते

हैं, क्योंकि आप पूंजीवादी श्रेणी के पिट्ठू हैं। श्रेणी-संघर्ष तो तभी मिट सकता है जब समाज में श्रेणियां न रहें।"

"यदि श्रेणियां समाज में सदा रही हैं, यदि यह मनुष्य-समाज का गुण और स्वभाव है तो श्रेणियां सदा ही रहेंगी भी"—शुद्ध साहित्यिक जी समाधान के स्वर में बोले—"जब समाज का श्रेणियों में बंटे रहना आवश्यक है तो समाज से हिंसा को मिटाने के लिये यही उचित है कि मानवता के धर्म को मानकर सबके कल्याण की भावना से सब श्रेणियां अपने-अपने धर्म का पालन करें।"

"धर्म की बात तो साहित्यिक जी झगड़े की है"—कामरेड ने टोक दिया—"धर्म का निश्चय कौन करेगा? पटेल साहब, करेंगे···? हमारा मतलब पूंजीपति श्रेणी करेगी या मज़दूर श्रेणी? मज़दूर कहता है मेरा पेट नहीं भरता, मेरे श्रम की कमाई में से मुझे कुछ और हिस्सा दो! पूंजीपति कहता है, नहीं और हिस्सा तुमको देंगे तो हमारा मुनाफ़ा ही क्या बचेगा? मज़दूर कहता है, हम हड़ताल करेंगे! पटेल साहब कहते हैं, यह कानून में मना है! और कानून बनाना पटेल साहब, यानि पूंजीपति श्रेणी के हाथ में है।

"आप बताइये, पहले मज़दूर मिलों में कितने घंटे काम करता था याद है? दस-बारह घंटे! अब करता है, आठ घंटे। याद है मज़दूर श्रेणी को इसके लिये कितना संघर्ष करना पड़ा, कितनी हड़तालें हुईं? शोषक श्रेणी शोषित श्रेणी को कोई भी अधिकार आसानी से नहीं देती। मज़दूर जेलों में गये और गोली चली। तब भी पूंजीपति कहता था, मज़दूर के काम के घंटे कम करने से राष्ट्र की हानि होगी। पूंजीपति अपने आपको तो राष्ट्र समझता है और मज़दूर को राष्ट्र की गैया या बकरा! मज़दूरी का एक-एक पैसा मज़दूर ने लड़कर ही बढ़ाया है। उसकी शक्ति एक ही बात में है कि संगठित होकर मांग करे जब वह संगठित होकर पैदावार को बंद कर देता है, तभी पूंजीपति उसकी बात मानने के लिये मज्बूर होता है। लेकिन चूंकि सरकार पूंजीपतियों की है, वह अपने क़ानून से मज़दूर को संगठित नहीं होने देती और जब ज़रूरत समझती है अपनी पुलिस और फौज ले कर मज़दूर को पीट कर अपना "कायम किया धर्म" मनवा लेती है।

"ऐसे समय राष्ट्र के लिये भय का नाम देकर, सार्वजनिक अशान्ति का नाम देकर व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सिद्धान्त को दबा दिया जाता है। क्या यह पूंजीवाद की निरंकुशता नहीं ? मज़दूर को जिन्दा रहना है तो उसे पूंजीपति श्रेणी के क़ानून और दमन शक्ति से लड़ना ही पड़ेगा। पैदावार के साधन और उसके बटवारे की व्यवस्था समाज के हित के लिये अपने हाथ में लिये बिना मज़दूर श्रेणी के सामने और कोई मार्ग नहीं। मतलब यह है कि पैदावार के साधनों को समाज की सांझी सम्पत्ति बना कर, पैदावार का बंटवारा मुनाफ़े के लिये नही समाज की आवश्यकता के अनुसार करके ही मज़दूर श्रेणी समाज से संघर्ष को समाप्त कर सकती है। पैदावार के साधन कुछ लोगों के हाथ में होने से ही समाज में श्रेणियां बन जाती हैं। पैदावार के साधन पूरे समाज की सांझी सम्पत्ति हो जाने से श्रेणियां बनने का कारण ही न रहेगा। पूंजीपति श्रेणी तो हृदय परिवर्तन द्वारा अपने आपको समाप्त कर नहीं देगी। सामन्त श्रेणी ने भी आत्मत्याग की भावना से अपने अधिकार पूंजीपति श्रेणी को नहीं सौंप दिये थे। आपके ये छुटपुटे राजे भी अपने आखिर दम तक प्रजातंत्र प्रणाली का विरोध करते रहे परन्तु पूंजीपति श्रेणी ने उन्हें निकाल भगाया। वह शोषण की एक अवस्था का अंत था। शोषण की दूसरी अवस्था का भी अंत होना चाहिये ! अब आवश्यक है कि मज़दूर श्रेणी पूंजीपति श्रेणी के कारण होने वाले अन्याय और अव्यवस्था को समाप्त करे। इसके लिये शासन शक्ति मज़दूर श्रेणी के हाथ में ही आना आवश्यक है। शासन-शक्ति पूर्ण रूप से मज़दूर श्रेणी के हाथ में हुये बिना पूंजीवादी व्यवस्था का अन्त नहीं किया जा सकता और न समाजवादी व्यवस्था ही कायम हो सकती है ?"—कामरेड ने अंतिम बात ऊंचे स्वर में कही।

साहित्यक जी ने हँस कर पूछा—"और मज़दूर श्रेणी को मारकर कौन भगायेगा ?"

"जब समाज में श्रेणी भेद रह नहीं जायगा तो यह प्रश्न कैसे उठ सकता है ?"—कामरेड ने उत्तर में प्रश्न किया !

"मज़दूर श्रेणी को भगायेगी मध्यम श्रेणी"—राष्ट्रीय जी ने सीना

फुला कर उत्तर दिया—"जर्मनी में भगाया था कि नहीं कम्युनिस्टों को मध्यम श्रेणी ने ?"—उन्होंने कामरेड को सम्बोधन किया—"कम्युनिज्म मजदूरों के असंतोष का अन्तरराष्ट्रीय रूप है और राष्ट्रीय भावना से शून्य है। मध्यम श्रेणी ही वास्तव में राष्ट्रीयता की रक्षा करती है वह राष्ट्रीयता की जड़ है। इस देश में भी वही होगा। राष्ट्र का भविष्य मध्यम श्रेणी के ही हाथ में है।"

"हां ठीक है"—सर्वोदयी जी ने और शुद्ध साहित्यक ने भी समर्थन किया—"संस्कृति की संरक्षक तो मध्यम श्रेणी ही है।"

"जर्मनी के इतिहास को आप ठीक नहीं पेश कर रहे"—इतिहासज्ञ बोले—"जर्मनी में मजदूर आन्दोलन को मध्यम श्रेणी ने नहीं, जर्मनी की पूंजीपति श्रेणी ने भी अकेले नहीं कुचला। जर्मनी में मजदूर क्रान्ति को दरवाजे पर आ गया देख संसार भर की पूंजीपति श्रेणी ने मिल कर उसे कुचल डाला। जर्मनी की मध्यम श्रेणी को साधन जरूर बनाया गया। जर्मनी में मजदूर श्रेणी को कुचल देना इसलिये सम्भव हो सका कि मजदूर श्रेणी अभी शासन की शक्ति नहीं पा सकी थी, समाज को श्रेणी रहित नहीं बना सकी थी। मध्यम श्रेणी ने रूस में क्यों नहीं मजदूर श्रेणी को कुचल डाला? पूंजीपतियों के हाथ का हथियार बन कर कोशिश तो वहां भी मध्यम श्रेणी ने की ही थी? रूस में भी संसार भर की पूंजीपति श्रेणी मिल कर रूस की जारशाही और पूंजीपति श्रेणी की सहायता कर रही थी परन्तु मजदूर श्रेणी के हाथ में पूर्ण, निरंकुश शक्ति आ जाने के कारण उन्हें डिगाया नहीं जा सका।

"परन्तु जर्मनी में नाज़ीवाद ने मजदूर श्रेणी की स्वाभाविक प्रगति को कुचल कर जो अन्तर-विरोध बढ़ा दिये उनका परिणाम क्या हुआ? शायद आप भी अपने देश की पूंजीपति श्रेणी के हाथ की छड़ी बन कर संसार भर पर भारत का साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखते, हैं?......और देशों में आदमी थोड़े ही बसते हैं जो चुप चाप आपके गुलाम बन जायंगे? अंग्रेज आप पर राज करे तो जुल्म, आप अंग्रेज, अमेरिका, रूस, जापान पर राज करने का स्वप्न देखें तो आपका राष्ट्रीय अधिकार!......उससे भी बुरा हाल होगा जो जर्मनी का हुआ! राष्ट्रहित

भी शासक श्रेणी के हाथ एक अच्छा बहाना है। पूंजीपति राष्ट्रहित के नाम पर देश भर को लूटते हैं। मध्यम श्रेणी राष्ट्रहित के नाम पर अपने प्रभुत्व का स्वप्न देखती है। अरे भाई, राष्ट्र तो देश का ६६ प्रतिशत किसान मज़दूर वर्ग है। राष्ट्र क्या चाहता है? यह स्वयम् राष्ट्र को ही फैसला कर लेने दो!

"अब मध्यम श्रेणी की स्थिति है क्या?"—मार्क्सवादी ने पूछा—"मध्यम श्रेणी पैदावार के साधनों की मालिक नहीं और न यह श्रेणी पैदावार के साधनों पर शासन करती है। पैदावार के उद्देश्य को भी यह श्रेणी निश्चय नहीं कर सकती इसलिये व्यवस्था को निश्चय करने का उन्हें कोई अवसर हो नहीं सकता। मालिक श्रेणी की दास बन कर ही यह श्रेणी अपनी जीविका पाती है। मध्यम श्रेणी मालिक श्रेणी से तनखा पा कर मालिक श्रेणी के स्वार्थ को पूरा करने के लिये मजदूरों पर शासन करने में उन्हें सहायता देती है इसलिये मालिक और शासक श्रेणी मध्यम श्रेणी के लोगों को मजदूरों की अपेक्षा कुछ अधिक सुविधायें दे देती है। जैसे कोई ठेकेदार अपने मजदूरों का प्रबन्ध करने वाले मेट मजदूर को कुछ अधिक मजदूरी और एक वर्दी दे देता है। परन्तु इस श्रेणी की आर्थिक अवस्था और संख्या नित्य गिर रही है। इस श्रेणी के जो लोग स्वतंत्र रुप से छोटे-मोटे कारोबार करते आ रहे थे, उनके कारोबार उद्योग-पतियों की छाया में मुर्झाते जा रहे हैं और इन्हें पूंजीपतियों का दलाल बन जाने के लिये मजबूर होना पड़ता है। इस श्रेणी के जो लोग अच्छे पेशे चलाते आये हैं, उनकी सन्तान भी उस दर्जे पर नहीं रह रही। समाज में देखिये, कुछ बरस पहले स्कूल मास्टर और क्लर्क लोग अच्छे खासे मध्यम श्रेणी के आदमी गिने जाते थे; आज उनकी हालत कारीगर मज़दूरों से गिरी हुई है।

"मध्यम श्रेणी का भविष्य और हित इस बात पर निर्भर करता है कि यह श्रेणी समाज को शोषण, और आर्थिक संकट में रखने वाली व्यवस्था का साथ देती है या समाज को शोषण से मुक्त कर आर्थिक प्रगति की ओर ले जाने के प्रयत्न का साथ देती है। समाज निरंतर आर्थिक संकट में जीवित नहीं रह सकता। समाज की जिस व्यवस्था में पैदावार करने

वाली श्रेणी अपने हाथों की हुई पैदावार को खर्च कहीं कर सकेगी और पैदावार (पदार्थों और पूंजी के रूप में) पूंजीपति श्रेणी के हाथ में इकट्ठी होती जायगी, उस व्यवस्था में आर्थिक संकट अवश्य ही आयगा। इस संकट का रूप यह होगा कि पूंजीपतियों के मुनाफ़े के कारण पैदावार का बहुत बड़ा भाग पूंजी बनता जायगा और साधनहीन श्रेणी को मिलने वाला भाग घटता जाने के कारण पैदावार की खपत घटती जायगी। परिमाण में पैदावार भी घटेगी। जिसके कारण समाज की पैदावार की शक्ति बांध बन कर व्यर्थ पड़ी रहेगी और साधनहीन श्रेणी भूख और दरिद्रता की आग में भस्म होती जायगी। समाज की वह आर्थिक व्यवस्था जो पैदावार करने वाली श्रेणी को नष्ट कर रही है, समाज को जीवित नहीं रख सकती; उसे बदलना ही होगा। समाज की व्यवस्था का शासन निश्चय ही समाज को जीवित रख सकने वाली श्रेणी के हाथ में आयगा। आज दिन पैदावार के साधनों का आकार इतना बड़ा हो गया है कि एक व्यक्ति उन्हें समुचित रूप से वश में नहीं रख सकता, उनका उपयोग नहीं कर सकता। पैदावार का तरीका सामूहिक और समाजिक हो जाने के कारण पैदावार को साधनों का स्वामित्व भी सामाजिक और सामूहिक होना, या पैदावार करने वालों के हाथ में होना आवश्यक हो गया है। मज़दूर श्रेणी आज समझ गई है कि हम ही समाज का पालन करते हैं और अनुभव कर रही है कि उनकी मेहनत के बिना समाज नहीं चल सकता। शोषण की व्यवस्था में जीवित रह सकना उनके लिये सम्भव नहीं। वह जानती है कि पैदावार हम करते हैं तो पैदावार के साधनों पर हमारा ही अधिकार होना चाहिये।

"मध्यम श्रेणी को यह निश्चय करना है कि वह मरणोन्मुख पूंजीवादी व्यवस्था की रक्षा का बोझ उठा कर, स्वयं पूंजीपति श्रेणी की दास बनी रह कर शेष समाज के साथ अपने आपको भी संकट में रखेगी या समाज के आर्थिक संकट को समाप्त कर सम्पूर्ण समाज के साथ विकास के मार्ग पर आगे बढ़ेगी।"

भद्र पुरुष ने प्रश्न किया—"क्या आप मध्यम श्रेणी से यह आशा करते हैं कि वे अपने आदर सम्मान और जीवन निर्वाह के ऊंचे दर्जे को छोड़ अपनी इच्छा से मज़दूरों की हीन अवस्था में जा मिलें ?"

"यानि अपने बौद्धिक जीवन को तिलांजली दे दें ?"—साहित्यिक जी ने भी प्रश्न का समर्थन किया।

"यह आपने राज़ की बात कही"—वैज्ञानिक बोले—"आप अपने स्वार्थ के दृष्टिकोण से या ईमानदारी से बात करें तो बात समझ आती है और उत्तर भी दिया जा सकता है। राष्ट्रीयता का ढोल मध्यम श्रेणी क्यों पीटती है ? खैर, मध्यम श्रेणी की यह आशंका कि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था में इस श्रेणी के जीवन का स्तर गिर जायगा, निमूल है। बहुत बड़े-बड़े पूंजीपति या जागीरदार लोग, जो अकेले बहुत बड़े-बड़े महलों में और कई-कई महलों में रहते हैं, कई-कई मोटरें, निजी रेलगाड़ियां, हवाईजहाज़ और पानी जहाज़ रखते हैं, यदि अपने लिये अब से कम वस्तुयें पाने की आशंका करें तो ठीक है। परन्तु ऐसे लोगों की संख्या दस लाख में एक भी कठिनाई से है। अमेरिका के सम्पूर्ण धन का रुपये में बारह आने वहां के केवल ८५ हज़ार व्यक्तियों के कब्जे में है और सबसे ऊंची श्रेणी में तो केवल १० हज़ार ही व्यक्ति हैं। इंगलैण्ड के धन का रुपये में ग्यारह आना वहां की केवल दो प्रतिशत जन संख्या के हाथ में है। युद्ध के बाद से हमारे देश में पूंजीपतियों को अवसर मिलने के कारण यहाँ भी आर्थिक विषमता का कहना ही क्या ?

"निश्चय ही पूंजीवादी व्यवस्था में मध्यम श्रेणी और मेहनत करने वाली श्रेणी की अवस्था शोचनीय है और लाख में दो एक व्यक्ति (बड़े पूंजीपति) बहुत ऐश में रहते हैं। यह सोचना ग़लत है कि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था में सम्पूर्ण समाज उसी अवस्था में रहेगा जिसमें आज मज़दूर रहते हैं।"

"अजी साहब"—कामरेड ने टोक दिया—"रूस के मज़दूर मक्खन खाते हैं, सूट पहनते हैं और छुट्टियों में पहाड़ों और समुद्रतट की सैर करते हैं। अपने क्लबों में थियेटर और नाच करते हैं, अच्छे से अच्छा इलाज उनका होता है। आपकी मध्यम श्रेणी के ऊंचे से ऊंचे ओहदे के अफ़सर भी उनका सा जीवन नहीं पा सकते !"

पूंजीपति श्रेणी अपने मुनाफ़े के लिये बाज़ार में दाम ऊँचे रखने के लिये पैदावार कम करती जाती है। सैकड़ों वैज्ञानिक तरीके ऐसे हैं जिनका

उपयोग केवल इसलिये नहीं किया जाता कि पुराने ढंग की मशीनों में लगा पूंजीपतियों का सरमाया व्यर्थ न हो जाय ! आज के वैज्ञानिक युग में प्रत्येक वस्तु की पैदावार जितनी चाहे बढ़ाई जा सकती है। मोटी और प्रत्यक्ष बात है कि आर्थिक संकट को दूर करने के लिये पूजीवादी देशों में कीमतें बढ़ाई जा रही हैं परन्तु समाजवादी चीन और रूस में कीमतें लगातार घटाई जा रही हैं। जिस प्रकार के काम मध्यम श्रेणी के लोग करते हैं, उनकी आमदनी और जीवन का स्तर रूस में आज पुराने पूंजीवादी रूस की अपेक्षा कई गुण अधिक ऊँचा है बल्कि डाक्टर, वैज्ञानिक, कलाकार और अविष्कारक जैसा जीवन रूस में बिता रहे हैं, वैसा किसी भी पूंजीवादी देश में नहीं बिता सकते !"

"परन्तु पशु की तरह पेट भर लेना ही तो मनुष्यता नहीं है"— वितृष्णा से साहित्यिक जी ने विरोध किया—"समाजवादी रूस में जनसाधारण को खाना मिल जाता होगा परन्तु उनकी वैयक्तिक स्वतंत्रता का तो अन्त हो गया। वहाँ न बोलने की स्वतंत्रता है न संगठन की।"

"जी, यह है पूंजीपति श्रेणी का झूठा प्रचार"—मार्क्सवादी बोले— "और इसका प्रयोजन है कि पूंजीवादी देशों की जनता समाजवाद की ओर आकर्षित होकर पूंजीवाद को समाप्त न कर दे। पूंजीवादी देशों की जनता को व्यक्तिगत स्वतंत्रता है ? स्वतंत्र व्यक्ति पहला काम करेगा अपना पेट भरना ! जिसे पेट भरने की स्वतंत्रता नहीं, उसे भी आप स्वतंत्र कहेंगे ? रूस में फिर से पूंजीवाद कायम करने की चेष्टा के लिये स्वतंत्रता अवश्य नहीं है। क्या आप के देश में पूंजीवाद को समाप्त कर सकने की स्वतंत्रता है ? दूसरों की स्वतंत्रता छीन कर जो अधिकार कुछ व्यक्तियों को दिये जायंगे, वे सम्पूर्ण समाज को स्वतंत्र नहीं बना सकते। पूंजीवादी देशों में पूंजीपति श्रेणी के अतिरिक्त कौन स्वतंत्र है ? पूंजीपतियों को दूसरों के श्रम का फल भोगने की स्वतंत्रता है, अपना स्वार्थ पूरा करने लायक सरकार बना लेने की स्वतंत्रता है, उन्हें इस बात की भी स्वतंत्रता है कि अपने स्वार्थ की रक्षा के लिये मजदूर श्रेणी के स्वतंत्रता आन्दोलन को कुचलने वाले कानून बना सकें। यह पूंजीपति श्रेणी का रामराज्य पूंजी का निरंकुश शासन नहीं तो और क्या है ? इसमें मेहनत

करने वाली श्रेणी को क्या स्वतंत्रता है ? न उचित रोज़गार की, न उचित शिक्षा और आवश्यकता पड़ने पर इलाज की और न अपने हित की रक्षा करने वाले कानून बना सकने की ! परन्तु रूस में मजदूर श्रेणी को जीवन निर्वाह के अवसर और अपने श्रम का फल पाने की स्वतंत्रता के साथ अपने शासन को शत्रुओं से निर्भय बनाने की भी स्वतंत्रता है ! रूस के समाजवादी शासन में मज़दूर श्रेणी अपने विरोधी पूंजीपतियों को मज़दूरों के श्रम का फल हथियाने की और मेहनत करने वाली श्रेणी के शासन के विरुद्ध मोर्चा जमाने के अवसर की स्वतंत्रता देने के लिए तैयार नहीं। सम्पूर्ण समाज की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये समाज-द्रोहियों का निरंकुश दमन अन्याय नहीं कहा जा सकता। राम-राज्य में जनता का निरंकुश शोषण तो आप को न्याय जान पड़ता है परन्तु समाजवाद में जनता की निरंकुश स्वतंत्रता आप को अन्याय जान पड़ती है ?"

"अच्छा मान लीजिये समाजवाद में सामजिक संकटों का उपाय हो जायगा" —कांग्रेसी ने तसल्ली सी दी—"तो आप वैधानिक ढंग से उसका उपाय कीजिए। अब तो देश में जनता का राज है, प्रजातंत्र है। आपको व्यक्तिगत और राजनैतिक आन्दोलन की स्वतंत्रता है। सरकार जनता के प्रतिनिधियों के फ़ैसले से चल रही है। आप चुनाव में अपना बहुमत पैदा कीजिये और वैधानिक तथा कानूनी ढंग से कानूनी परिवर्त्तन द्वारा आप जो चाहे कर सकते हैं। आप श्रेणी संघर्ष, मजदूर राज और क्रान्ति के नारे क्यों लगाते हैं ! अरे भाई, चुनाव में आपको भी उतना ही अवसर है जितना पूंजीपतियों को और दूसरे राजनैतिक दलों को !.......क्यों साहब ?"—उन्होंने सर्वोदयी जी और साहित्यिक को समर्थन के लिये संकेत किया।

"साहब किस बात की स्वतंत्रता है और किसे है ?" —कामरेड ने चौंक कर पूछा—"शायद कांग्रेसी राज की प्रशंसा करने की, सफ़ेद टोपी पहनने की और मुनाफ़ा कमाने की स्वतंत्रता है ! राज-भक्तों को तो अंगरेज़ी राज और नाज़ीराज में भी स्वतंत्रता थी। सरकार के पिट्ठुओं को तो सभी व्यवस्थाओं और तानाशाहियों में भी स्वतंत्रता होती है। आप बताइये प्रत्येक प्रान्त की कांग्रेसी सरकार ने शान्ति और सुरक्षा कानून जारी

किया हुआ है या नहीं ? कांग्रेसी राज में दफ़ा १४४ तो कभी ख़त्म ही नहीं होती । दमन कानून उन्हीं लोगों के खिलाफ़ तो लागू होते हैं जो पूंजी-पति व्यवस्था को बदलने का यत्न करना चाहते हैं ! ऐसे लोगों को न बोलने की स्वतंत्रता है, न सभा करने की, न जनता के सामने अपनी बात रखने की और न जनता को संगठित करने की ! वैधानिक उपाय से व्यवस्था परिवर्तन कैसे हो सकता है ? विधान का तो अर्थ ही है शासन व्यवस्था की रक्षा !"

"देखिये, अशान्ति और हिंसा का प्रचार तो कोई भी सरकार नहीं सह सकती" - सर्वोदयी जी बोले—"अशान्ति और हिंसा का तो दमन करना ही होगा ।"

"विरोध का सामना आप दमन और हिंसा से ही करेंगे तो अहिंसा का उपदेश किस समय के लिये है ?"—मार्क्सवादी ने पूछा—"यदि लोगों का मन चाहा ही होता रहे तो सभी अहिंसा का पालन मजे में कर सकते हैं ।"

"बात फिर वहीं आ गई; अशान्ति और हिंसा क्या है"—वैज्ञानिक बोले—"इस बात का निर्णय तो पूंजीपति व्यवस्था के स्वार्थ से ही होगा न ?"

"नहीं यह तो मोटी अकल की बात है"—कांग्रेसी बोले—"जिस बात से सार्वजनिक जीवन की व्यवस्था बिगड़े, जैसे आप हड़ताल कराते हैं ; यह अव्यवस्था पैदा करना है । इसका तो कानूनी तौर पर दमन करना ही होगा ।"

"मज़दूरों का हड़ताल करना किस नैतिक सिद्धान्त से हिंसा कहा जा सकता है साहब ? हड़ताल तो मज़दूरों पर की जाने वाली पूंजीवादी हिंसा का अहिंसात्मक विरोध है ।" - वैज्ञानिक ने प्रश्न किया—"मज़दूर को अपने श्रम का पेट भरने लायक मूल्य मांगने का अधिकार है या नहीं ? वह यह मूल्य मांगता है । मजदूर के अकेले मांग करने का कुछ मूल्य नहीं । मुकाबिले में एक ओर एक मालिक है, दूसरी ओर हैं दस हजार मज़दूर ? यदि अकेला मजदूर अपनी मांग रखता है तो मज़दूर मालिक से दस हजार गुना कमजोर होता है । जो नौ हज़ार नौ सौ निन्यानवे

मजदूर मांग नहीं कर रहे, वे मालिक की ओर समझे जायंगे। इसलिये मजदूरों को संगठित मांग करनी पड़ती है। मजदूर की मांग की उपेक्षा की जाती है तो उसके पास अपनी मांग पूरी कराने का क्या साधन है? जो मांग पूरी नहीं कराई जा सकती उसका कुछ मूल्य नहीं। मजदूर सरकार के पास दुहाई करता है। पूंजीपतियों की प्रतिनिधि सरकार उसकी मांग को ठुकरा देती है। उदाहरण आप के सामने हैं, अध्यापकों ने वेतन बढ़ाने की मांग की, नहर कर्मचारियों ने की, रेल मजदूरों ने की, डाक विभाग ने की, कपड़ा मिल वालों ने की। इन सब की मांग सरकार को अनुचित ही मालूम हुई। जब मजदूर कोई मांग करता है आप दफ़ा १४४ लगा देते हैं कि वह जनता के सामने अपनी बात न कह सके! वह अपनी मांग पूरी कराने के लिये हड़ताल करता है, तो आप उसे पकड़ कर जेल में डाल देते हैं। उसे सभा करके अपना सगठन नहीं करने देते, उसके अखबार बन्द कर देते हैं। उस पर मुकदमा चलाकर उसका अपराध साबित नहीं करते। ऐसे लोगों पर आप सार्वजनिक रूप से मुकदमा चलाकर उनके काम को जनता के सामने रखने का साहस नहीं कर सकते क्योंकि आप को भय है कि जनता की सहानुभूति जो अधिकांश में शोषित हैं, व्यवस्था में परिवर्तन चाहने वालों की ओर हो जायगी। आप मजदूरों को जेल में डाल देते हैं, उनकी सभा और जलूस पर लाठी चार्ज करते हैं केवल इसलिये कि आपके पास शस्त्र-शक्ति है? परन्तु इसमें नैतिकता क्या है, और क्या अहिंसा है? मजदूरों से हड़ताल द्वारा अपनी मांग पूरी कराने का अधिकार छीनना उतना ही अनैतिक और अन्याय है जितना एक जमाने में शर्तबन्द-मजदूरी (Indentured labour) का कानून था। यह केवल व्यवस्था की शक्ति से, शस्त्र-शक्ति से एक श्रेणी द्वारा दूसरी श्रेणी का दमन है। आप के कानून दलित और शोषित श्रेणी को अपनी मुक्ति का कोई अवसर नहीं देते? यों आप बात बनाते हैं व्यक्तिगत स्वतंत्रता की, कानून के सामने सब के एक समान होने की, भाषण, विचारों और प्रचार की स्वतंत्रता की। आपके इन एलानों में क्या सचाई है? आपकी यह सब स्वतंत्रता पूंजीपति श्रेणी के विधान को अपने लिये कल्याणकारी समझने वालों के लिये ही है। जो लोग इस व्यवस्था को बदलना चाहते हैं वे आपकी दृष्टि में शान्ति के शत्रु हैं।

उनके लिये कोई स्वतंत्रता और अवसर नहीं। पूंजीपति श्रेणी की व्यवस्था अपने स्वार्थ सत्य-अहिंसा और न्याय को जबरन लागू किये हैं। इस व्यवस्था में वह कोई परिवर्तन या गड़बड़ सहन करने के लिये तैयार नहीं। परन्तु यह व्यवस्था मध्यम वर्ग और मजदूर श्रेणी को साधनों और अवसर से हीन बनाकर उन्हें शोषण और दमन के शिकंजे में जकड़े हुये है। मजदूर श्रेणी का सत्य, अहिंसा और न्याय का आदर्श दूसरा है। जब दो आदर्शों में भिड़न्त होगी तो शक्ति से ही न्याय का निर्णय होगा। आज पूंजीपति व्यवस्था अपनी शक्ति का उपयोग कर रही है। आज इसे न्याय कहती मजदूर श्रेणी अपनी शक्ति के उपयोग का अवसर पाने के लिये संघर्ष कर रही है और अपना न्याय स्थापित करना चाहती है।"

वैज्ञानिक के इतने लम्बे भाषण के बाद भी मार्क्सवादी अपनी बात स्पष्ट करने के लिये बोले—"व्यवस्था और विधान चाहे सामन्त श्रेणी का हो या पूंजीपति श्रेणी का, विधान, और सरकार की शस्त्र शक्तिका प्रयोजन अपनी व्यवस्था (अपने हितों और शासन के अधिकारों) की रक्षा ही होता है। कायम सरकार और उसकी सहायक श्रेणी अपने अधिकारों की रक्षा के लिये जनता को अपने प्रचार द्वारा गुमराह करने की कोशिश करती है, विरोधी श्रेणी को प्रचार का अवसर और अधिकार नहीं देती। जनमत को अपने विरुद्ध जान कर चुनाव आदि को भी संकटमय स्थिति के बहाने से टाल देती है।

"दमनकारी कानूनों पर जनता की श्रद्धा नहीं रहती तो सरकार लाठी और गोली का सहारा लेती है, अपनी व्यवस्था को पलटने वाले प्रयत्नों को खून के भंवर में डुबा देने में भी उसे संकोच नहीं होता। सरकार अपने इस दमन को "व्यवस्था की रक्षा के लिये शक्ति का उचित और आवश्यक उपयोग" कहती है। व्यवस्था में मौलिक परिवर्तन की मांग करने वालों के प्रयत्न को हिंसा और उपद्रव पुकारा जाता है। इस व्यवस्था में कुछ सुधार की मांग करने का अवसर केवल उन्हीं आन्दोलनों को दिया जा सकता है जो पूंजीवादी व्यवस्था को पलटना नहीं चाहते बल्कि इसे संकट में देखकर कुछ सुधारों द्वारा इसे चिरस्थायी बना देना चाहते हैं, उदाहरणतः प्रजातंत्र-समाजवादी आन्दोलन! पूंजीपति व्यवस्था

को प्रजतंत्र कहना ही सब से बड़ा धोखा है। आर्थिक समानता के बिना, सब लोगों को अपना राजनैतिक मत प्रकट करने का समान अवसर हो ही नहीं सकता। पूंजीवाद का राज रहते तो यहाँ व्यवस्था अपने दोष और अपराध प्रकट करने की स्वतंत्रता भी नहीं देती ! ऐसे दल और संगठन आन्दोलन का नेतृत्व मज़दूर श्रेणी के हाथ में न देकर पूंजीपति श्रेणी और उसके दलालों के ही हाथ में रखते हैं। यह लोग क्रान्ति द्वारा पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त कर नयी व्यवस्था स्थापित करने की बात न कर पूंजीवादी प्रजातंत्र की राह से समाजवाद के विकास का प्रपंच खड़ा करते हैं और शोषित श्रेणियों को पूंजीवादी व्यवस्था पर आघात करने से रोके रहते हैं। पूंजीवादी व्यवस्था से इनका वैसा ही सम्बंध है जैसा गांधीवाद का ब्रिटिश साम्राज्यशाही से था।

"शोषक श्रेणी के राज में शोषित श्रेणी के लिये समान अधिकार की बात ही ग़लत है। अधिकार का प्रयोग तो अवसर और साधनों से ही हो सकता है। जिस श्रेणी के पास साधन नहीं, उसे अपने अधिकारों के प्रयोग का अवसर भी नहीं। पूंजीवादी प्रजातंत्र का सबसे बड़ा धोखा है सबके लिये समान अधिकार और न्याय का एलान करना। पूंजीवादी प्रजातंत्र एक हाथ से सबको कानूनी समानता का और न्याय का अधिकार देता है, व्यवसाय और जीविका कमाने की स्वतंत्रता देता है, दूसरे हाथ से शोषित श्रेणी को साधनहीन बनाकर उनसे अधिकारों के प्रयोग का अवसर छीन लेता है। पूंजीवादी प्रजातंत्र में चुनाव के जितने साधन हैं वे सब पूंजीपतियों के काबू में रहते हैं।

चुनाव में तो सदा वही पार्टी जीतती है जो ज्यादा अखबार निकाल कर झूठा प्रचार कर सकती है, ज्यादा मोटरें दौड़ा सकती है। कांग्रेस को भीतरी चुनाव तक में हार जीत रुपये के ज़ोर पर होती है। चुनाव में सरकारी शक्ति का प्रयोग अंग्रेज भी खूब करता था और कांग्रेस सरकार तो उससे भी ज्यादा करती है।

पूंजीवादी व्यवस्था के हाथ में सब से ज़बरदस्त शस्त्र है, मज़दूर श्रेणी के संगठन और आन्दोलन को गैरकानूनी करार दे देना। न्याय की समानता भी धोखा है क्योंकि पूंजीपति श्रेणी की व्यवस्था में न्याय का मूल्य

देना पड़ता है। न्याय का मूल्य देने का अवसर साधनहीन श्रेणी के पास कहाँ ? शोषित श्रेणी अपने हाथ-पाँव पूँजीवादी व्यवस्था के नियमों से बांध कर कभी स्वतंत्रता नहीं पा सकती और न शासन का अधिकार अपने हाथ में ले सकती है। शोषित श्रेणी के लिये मुक्ति, आत्मनिर्णय और समाज के शासन का अधिकार पाने का एक ही उपाय है—अपनी संगठित शक्ति से पूँजीवादी व्यवस्था का चलना असम्भव करके उसके स्थान पर अपनी नयी आर्थिक और शासन की व्यवस्था कायम करना। यह न्याय के दो आदर्शों का संघर्ष है।

"पूंजीवाद का न्याय पूंजीपति श्रेणी के लिये निरंकुश शोषण का अधिकार कायम करता है, यह है रामराज का प्रजातंत्र ! समाजवाद मेहनत करने वाले सब लोगों के लिये जीविका के लिये प्रयत्न और श्रम करने का समान अवसर, और सभी लोगों के लिये उनके श्रम का पूरा फल का अवसर, और मेहनत करने वालों के न्याय की व्यवस्था कायम करने का ऐसा अवसर चाहता है जिसमें शोषण की व्यवस्था के पक्षपाती, पूंजीवाद और साम्राज्यशाही के दलाल, कोई अड़चन न डाल सकें—यह है मजदूर-राज की तानाशाही ! क्या आप ऐसी व्यवस्था को तानाशाही और अन्याय कहेंगे ? कौन न्याय अधिक बड़ा और समर्थ है, इस बात का निर्णय तो पूंजीपति और मजदूर श्रेणी की शक्ति ही करेगी।"

मार्क्सवादी के लम्बे वक्तव्य के बाद कामरेड उत्साहित होकर बोले— "श्रेणी रूप से मेहनत करने वाली श्रेणी ही समाज में सबसे बलवान है। इसलिये समाज का नेतृत्व इसी श्रेणी के हाथ में आना न्याय है और आवश्यक भी है।"

भद्रपुरुष ने टोक दिया—"पूंजीपति-राज या कांग्रेसी-राज से परेशान हम चाहे जितने हों परन्तु इन नेताओं के सिवा देश में ऐसा है कौन जो देश का शासन सम्भाल सके ?"

राष्ट्रीय इनके समर्थन में बोलना ही चाहते थे परन्तु सर्वोदयी जी को हाथ उठाते देख चुप रह गये। सर्वोदयी जी ने गम्भीरता से कहा—"इसी को भगवान का विधान कहते हैं ! जो जिस काम के योग्य है, उसे वहीं

काम करना चाहिये; तभी समाज में सुव्यवस्था की शान्ति और अहिंसा रह सकती है·······"

इन्हें इतिहासज्ञ ने टोक दिया—"अंग्रेज भी कहते थे कि हिन्दुस्तानी अपना शासन करने के योग्य नहीं हैं। शासन करने की योग्यता का तो उसी समय पता लगता है जब शासन करने का अवसर आता है। जनता के दुर्भिक्ष, कंगाली और बेकारी से तड़पने का उपाय वे ही लोग कर सकेंगे जो इसके विरुद्ध पुकार उठाते हैं, इसके लिये संघर्ष कर रहे हैं। उन्हें जनता का शत्रु बता कर जेलों में बन्द कर आप कहें कि हमारे सिवा देश का शासन करने की योग्यता किसी में नहीं, तो यह बेइमानी है। यह केवल जनता को धोखा देना है। जब रूस में ज़ारशाही कायम थी, वहाँ भी मज़दूर ही राज की व्यवस्था को सफलता से कायम कर सकने वाले लोग दिखाई नहीं देते थे। जो लोग शोषण की व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का साहस कर सकते हैं, वे शोषण रहित व्यवस्था कायम करने की योग्यता रखते हैं। आपके विचार में तो संसार का सबसे योग्य देश है अमेरिका, और अमेरिका के सबसे योग्य लोग वे हैं जो अमरीकन साम्राज्य की रक्षा पर तैनात हैं। कोरिया के बहुत अयोग्य समझे जाने वाले किसान-मज़दूरों की व्यवस्था आज अमेरिका को कैसे जूते लगा रही है? कोरिया के किसान-मज़दूरों के स्वतंत्र हो कर जीवित रहने के संकल्प के आगे, कोरिया की कम्युनिस्ट व्यवस्था के आगे अमेरिका के बड़े से बड़े वैज्ञानिक शस्त्र असफल साबित हो रहे हैं।

"इतिहास से शिक्षा लीजिये महाराज! यह बात इतिहास की कसौटी पर परखिये कि रामराज के शोषक प्रजातंत्र की संस्कृति आपके देश और समाज के लिये अधिक कल्याणकारी और सबल बनाने वाली है या मेहनत करने वाली जनता के राज की·········?"